इग्नू
जन–जन की
विश्वविद्यालय

बी.एच.आई.सी.-101

भारत का इतिहास-I

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

3rd Proof on 22/06/2020

विशेषज्ञ समिति

प्रो. कपिल कुमार (अध्यक्ष)
इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. पी. के. बंसत
इतिहास और संस्कृति विभाग
मानविकी एवं भाषा विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

प्रो. डी. गोपाल
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. माक्खन लाल
संस्थापक, निदेशक एवं प्राध्यापक
दिल्ली का विरासत अनुसंधान
और प्रबंधन संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. संगीता पांडे
इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समंवयक : प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर

पाठ्यक्रम संयोजन दल

प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर **डॉ. शुचि दयाल** **डॉ. अभिषेक आनंद**

इकाई संख्या	पाठ्यक्रम लेखक
1.*	प्रो. बी. पी. साहू, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली एवं डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
2.**	प्रो. के. पदैय्या (सम्मानपूर्वक सेवा मुक्त) प्राध्यापक एवं पूर्व निदेशक, डेक्कन कॉलेज पी.जी.आर.आई., पूणे; प्राध्यापक रंजना रे पूर्व प्राध्यापक एवं सम्मानपूर्वक सेवामुक्त प्राध्यापक, नृविज्ञान विभाग, कोलकता विश्वविद्यालय; एवं स्व. प्राध्यापक वी. एन मिश्रा, पूर्व निदेशक, डेक्कन कॉलेज पी.जी.आर.आई., पूणे; प्राध्यापक एम. के. सिंह नृविज्ञान विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय
3.***	स्व. प्राध्यापक वी. एन मिश्रा, पूर्व निदेशक, डेक्कन कॉलेज पी.जी.आर. आई., पूणे; प्राध्यापक के. पदैय्या सम्मानपूर्वक सेवा मुक्त प्राध्यापक एवं पूर्व निदेशक, डेक्कन कॉलेज पी.जी.आर.आई., पूणे; प्राध्यापक रंजना रे पूर्व प्राध्यापक एवं सम्मानपूर्वक सेवामुक्त प्राध्यापक, नृविज्ञान विभाग, कोलकता विश्वविद्यालय; प्राध्यापक ए. आर. संख्यान आगंतुक आचार्य, भारतीय नृवैज्ञानिक सर्वेक्षण; डॉ. एम. के. सिंह नृविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
4.	डॉ. वी. सेल्वाकुमार समुद्री इतिहास व समुद्री पुरातत्व विभाग, तमिल विश्वविद्यालय, तंजावूर
5.	डा. आवंतिका शर्मा, इतिहास विभाग, इन्द्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
6.	डॉ. आवंतिका शर्मा, इतिहास विभाग, इन्द्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7.****	प्राध्यापक पी. के. बसंत, इतिहास और संस्कृति विभाग, मानविकी एवं भाषा विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
8. और 9 *****	स्व. प्राध्यापक एम. एल. के. मूर्ति, पूर्व प्रमुख, क्षेत्रीय अध्यक्ष केन्द्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद; डॉ. सुदेशना गूहा, इतिहास विभाग,

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, शिव नादर विश्वविद्यालय, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश; प्राध्यापक कुमकुम रॉय, इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

10. डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय सहायक प्राध्यापक, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

11. डा. शुचि दयाल सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

12.****** प्राध्यापक पी. के. बसंत, इतिहास और संस्कृति विभाग, मानविकी एवं भाषा विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली; प्राध्यापक कुमकुम रॉय, इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; डॉ. टी. एन. राय, प्राचीन भारतीय इतिहास व पुरातत्व विभाग, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय वाराणसी; प्राध्यापक पी. शनमुगन मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई।

13. प्रीती गुलाटी, शोधकर्ता, इतिहास अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

14. डॉ. शुचि दयाल सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

15.******* प्राध्यापक कुमकुम रॉय, इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; प्राध्यापक अजय डाडेंकर इतिहास विभाग, निदेशक, (मानविकी और सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ), शिव नादर विश्वविद्यालय, गौतम बुद्ध नगर, यूपी; प्राध्यापक अलोका प्राशर सेन सेवानिवृत प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

16. प्रीती गुलाटी, शोधकर्ता, इतिहास अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

17.******* प्राध्यापक कुमकुम रॉय, इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; प्राध्यापक अजय डाडेंकर इतिहास विभाग, निदेशक, (मानविकी और सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ), शिव नादर विश्वविद्यालय, गौतम बुद्ध नगर, यूपी; प्राध्यापक अलोका प्राशर सेन सेवानिवृत प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

18. डा. शुचि दयाल सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

19. उपासना ढंकर संस्थापक एवं सी ई ओ, मेलोडि पाईपर्स सर्विसेज, प्रा. लि, गुड़गांव

* ''भौगोलिक क्षेत्र'' भाग **ई.एच.आई.-02 (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), खंड 1 (पर्यावरण और अनुकूलन का आरंभिक स्वरूप), इकाई-1 (भारतः प्राकृतिक विशेषताएं) एवं इकाई-2 (भारतीय इतिहास में क्षेत्रः गठन एवं विशेषताएं)** से ग्रहित है।

** यह इकाई **एम.ए.एन.-002 (पुरातात्वि नृविज्ञान), खंड 5 (पुरापाषाण संस्कृति), इकाई 1, 2, 3, 4 (निम्न पुरापाषाण संस्कृतियां, मध्य पुरापाषाण संस्कृति, उच्च पुरापाषाण संस्कृति, पुरापाषाण कला)** से ग्रहित है एवं **खंड 6 (मध्यपाषाण संस्कृतियां), इकाई 1, 2 और 3 (मध्य पाषाण विशेषताएं, भारतीय मध्य पाषाण संस्कृति, मध्य पाषाण कला)** से ग्रहित की गई है।

*** यह इकाई **एम.ए.एन.-002 (पुरातात्वि नृविज्ञान), खंड 5 (पुरापाषाण संस्कृति), इकाई 1, 2, 3, 4 (निम्न पुरापाषाण संस्कृतियां, मध्य पुरापाषाण संस्कृति, उच्च पुरापाषाण संस्कृति, पुरापाषाण कला)** एवं **खंड 6 (मध्य पाषाण संस्कृतियां), इकाई 1, 2 & 3 (मध्य पाषाण विशेषताएं एवं भारतीय मध्य पाषाण संस्कृति, मध्यपाषाण कला)** से ग्रहित की गई है।

**** यह इकाई **ई.एच.आई.-02 (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), खंड 2 (हड़प्पा की सभ्यता), इकाई-9 (ह्रास और विघटन)** से ग्रहित है।

***** यह इकाई **ई.एच.आई.-02 (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), खंड 3 (प्राचीन भारतीय समाज और विकासः 2000 बी.सी. से 1000 बी.सी.), इकाई-12 (प्रारंभिक वैदिक समाज)** एवं **इकाई 13 (उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन)** से ग्रहित है।

****** यह इकाई **ई.एच.आई.-02 (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), खंड 4 (छठी से चौथी शताब्दी ई.पू. तक), इकाई-17 (बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार)** से ग्रहित है।

******* ये इकाइयां **ई.एच.आई.-02 (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), खंड 5 (राज्यतंत्र, समाज और अर्थव्यवस्था 320 से 200 ई. पू. तक), इकाई-18 (मगध साम्राज्य का विस्तार), इकाई 21 (अशोक की धम्म नीति)** एवं **इकाई 22 (साम्राज्य का विघटन)** से ग्रहित है।

सामग्री प्रारूप और भाषा संपादन — **प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर, डॉ. शुचि दयाल**

अनुवाद	**ग्राफिक्स**	**कवर डिज़ाइन**	**पुनरीक्षण (Vetting)**
डॉ. धर्मराज कुमार	डॉ. शुचि दयाल	श्री संदीप मैनी	डॉ. शुचि दयाल
राजेन्द्र		डॉ. शुचि दयाल	डॉ. अभिषेक आनंद
बिरेन्द्र साह		सामाजिक विज्ञान	प्राध्यापक श्री कृष्णा
डॉ. वंदना		विद्यापीठ, इग्नू,	
हेमलता यादव		नई दिल्ली	
अरूणा शर्मा			
अनीता चौधरी			

सामग्री निर्माण दल

श्री तिलक राज	श्री यशपाल	श्री सुरेश कुमार
असिस्टेंट रजिस्ट्रार (प्रकाशन)	अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)	एसओएसएस
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली	एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली	इग्नू, नई दिल्ली

जून, 2020

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता, अनुलिपिक या किसी अन्य साधन द्वारा,

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बिना किसी लिखित आदेश व पुनः इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कोर्स की सूचना विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी कार्यालय, नई दिल्ली–110068 के द्वारा प्राप्त की जा सकती है अथवा विश्वविद्यालय की वेबसाइट http://www.ignou.ac.in देखें

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से निदेशक सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राज प्रिंटर्स

मुद्रित :

पाठ्य विवरण

		पृष्ठ सं.
पाठ्यक्रम परिचय		
खंड 1	**प्राचीन भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण**	**13**
इकाई 1	भौगोलिक क्षेत्र और स्रोत	15
इकाई 2	प्रागैतिहासिक काल	40
इकाई 3	शिकारी-संग्रहकर्ता समाज	69
खंड 2	**खाद्य उत्पादन का आगमन और हड़प्पा सभ्यता**	**87**
इकाई 4	नवपाषाण काल	89
इकाई 5	हड़प्पा सभ्यता-I	106
इकाई 6	हड़प्पा सभ्यता-II	123
इकाई 7	हड़प्पा सभ्यता-III	145
खंड 3	**वैदिक काल और संस्कृतियों में परिवर्तन**	**159**
इकाई 8	वैदिक काल-I	161
इकाई 9	वैदिक काल-II	174
इकाई 10	लौह का आविर्भाव	188
इकाई 11	बौद्धिक विकास और तपश्चर्या	208
इकाई 12	बौध धर्म, जैन धर्म तथा आजिवक	225
खंड 4	**भारत : छठी शताब्दी बी. सी. ई. से 200 बी. सी. ई. तक**	**247**
इकाई 13	जनपद एवं महाजनपद	249
इकाई 14	उत्तर पश्चिम में सिकंदर का आक्रमण	269
इकाई 15	मगध का उदय	282
इकाई 16	मौर्य साम्राज्य	295
इकाई 17	मौर्य	319
इकाई 18	पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी	343
इकाई 19	लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य : प्रारंभिक भारत में स्त्रियाँ	360

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए दिशानिर्देश

इस पाठ्यक्रम में हमने शिक्षण सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए एक समान प्रतिमान का पालन किया है। यह पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण घटनाओं को एक कालानुक्रमिक तरीके में रेखांकित करते हुये एक परिचय के साथ शुरू होता है। इसमें 19 इकाइयाँ है। अध्ययन की सुविधा के लिए सभी इकाइयों को एक समान संरचना के साथ प्रस्तुत किया गया है। इकाई के पहले भाग में उद्देश्य यह जानने में मदद करते हैं कि आपको इकाई के अध्ययन से क्या सीखने की उम्मीद है। कृप्या इन उद्देश्यों को ध्यान से देखें और इकाई के कुछ भागों का अध्ययन करने के बाद उन्हें प्रतिबिंबित और जाँचते रहें। इकाई की प्रस्तावना आपको संबंधित विषय क्षेत्रों से परिचित कराती है और आपको विषय-वस्तु प्रस्तुत करने के तरीकों के बारे में बताती है। इसके बाद भाग व उप-भाग के माध्यम से मुख्य विषय क्षेत्र पर चर्चा की गई है ताकि वह आसानी से समझ आ सके।

पाठ के बीच में कुछ बोध प्रश्न प्रदान किये गये हैं। हम अपको सलाह देते हैं कि जब आप उन तक पहुंचे, तो इनके उत्तर लिखने का प्रयास करें। ये आपके अध्ययन का आंकलन करने व विषय की अपनी समझ का परिक्षण करने में आपकी मदद करेंगे। सारांश के बाद दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तरों के दिशानिर्देशों के साथ अपने उत्तरों की तुलना करें। प्रमुख शब्दों और अपरिचित शब्दों को शब्दावली के माध्यम से समझाया गया है। इकाई के अंत में हमने संदर्भ ग्रंथ के तहत पुस्तकों और लेखों की एक सूची भी प्रदान की है। इनमें वे स्रोत शामिल हैं जो संबंधित इकाई के लिए पठन सामग्री विकसित करने के लिए उपयोगी हैं या अध्ययन सामग्री के निर्माण के दौरान प्रयुक्त किए गए हैं। आप उन पर अवश्य नज़र डालें। वे विषय-वस्तु को समग्र रूप से समझने और सीखने में आपकी सहायता करेंगे।

पाठ्यक्रम परिचय

भारत का इतिहास एक लंबी अवधि का है। इसे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलुओं में बदलाव के द्वारा चिन्हित किया गया है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको उन प्रमुख परिवर्तनों और निरंतरताओं से परिचित कराना है जिन्होंने भारत के इतिहास के विभिन्न चरणों को लक्षित किया। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी देशों में मानव समुदायों में समान गति से परिवर्तन नहीं हुए। और यह भी कि जो परिवर्तन हुए वे सब जगह समान नहीं थे। इसीलिए जब हम इतिहास के विभिन्न चरणों में भारतीय समाज का अध्ययन करते हैं तो हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि भारत में जो भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वे अन्यत्र, जैसे चीन या यूरोप के इतिहास में, हुए परिवर्तनों के ही समान थे। यह सही है कि कई समाजों में हुए परिवर्तनों का स्वरूप कुछ-कुछ समान है। जैसे, भारतीय समुदायों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जब मानव ने शिकारी जीवन तथा अन्न संग्रह करके गुज़ारा करने की स्थिति से पशु पालन और कृषि के जीवन में प्रवेश किया। इसी के आगे के एक चरण में राज्य संगठन का उदय हुआ। ये परिवर्तन अन्य कई समाजों में भी भिन्न कालों में दिखायी पड़ते हैं, लेकिन इन सामान्य परिवर्तनों में हर समाज में सूक्ष्म अंतर भी मिलते हैं।

जब हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करें तो हमें दो बातें जान लेनी चाहिए :

1) भारतीय इतिहास में परिवर्तन के प्रमुख चरण कौन-कौन से थे और ये कैसे हुए?
2) भारतीय समाज में अन्य समाजों से भिन्न कही जाने वाली कौन-सी विशिष्ट संस्थाएँ और सांस्कृतिक तत्व हैं?

जब हम प्राचीन काल के इतिहास की बात करते हैं, तो हम अपने इतिहास के ''मध्यकालीन'', ''आधुनिक'' आदि अन्य कालों की धारणा का संकेत कर रहे हैं। इस पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद आप मध्यकालीन इतिहास तथा आधुनिक इतिहास के बारे में पढ़ेंगे, पर अभी आपके मन में यह प्रश्न कौंध रहा होगा कि प्राचीन इतिहास से हमारा क्या अभिप्राय है और साथ ही, इस प्रकार के विभाजन के पीछे अंतर का क्या आधार है? वे कौन से तत्व या प्रवृतियाँ हैं जो प्राचीन को हमारे इतिहास के अन्य युगों से अलग करती हैं? सच्चाई तो यह है कि इस प्रश्न का उत्तर देना इतना सरल नहीं है। वास्तव में, हमारे देश के इतिहास को तीन युगों में विभाजित करने के पीछे यूरोपीय इतिहास लेखन का प्रभाव रहा है। हालाँकि यह काल-विभाजन निराधार नहीं है, लेकिन आज तक इतिहासकार इस प्रश्न पर तर्क करते दिखाई देते हैं कि कौन-सा युग कब समाप्त हुआ और कौन-सा कब शुरू हुआ।

किसी भी देश के इतिहास का काल-विभाजन करते समय दो कालों के बीच बहुत स्पष्ट सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। लेकिन हम दोनों युगों के मध्य पाई जाने वाली प्रमुख सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनमें भेद दिखा सकते हैं और इस रूप में उन्हें अलग कर सकते हैं। इस प्रकार, इतिहासकारों ने यह महसूस किया कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं के कारण हमारे इतिहास में प्राचीन काल का निर्धारण हो पाया। छठी-सातवीं शताब्दी सी.ई. से ही इसमें परिवर्तन प्रारंभ हो गए थे। हालाँकि कभी भी पूर्ण रूप से युगों के बीच स्पष्ट विभेद नहीं हो पाया। पुराना युग समाप्ति की ओर बढ़ा और साथ ही नए युग का प्रारंभ उसमे पहले से ही शामिल हो गया। उदाहरण के लिए, राजनैतिक संगठन का गणतांत्रिक रूप, जो उत्तर भारत के विभिन्न भागों में गुप्त वंश तक प्रचलित था, चौथी शताब्दी सी.ई. से

लुप्त हो गया। आर्थिक क्षेत्र में नए प्रकार के कृषक संबंध अस्तित्व में आए। जाति-प्रथा जो उत्तर वैदिक काल से अस्तित्व में आ गयी थी, गुप्तवंश के परवर्ती काल में नए रूप धारण करने लगी। साथ ही, प्रादेशिक संस्कृतियों के कुछ तत्व, जैसे प्रादेशिक भाषाएँ, गुप्तोत्तर काल में नए रूप में परिणत हुए। ये सारे परिवर्तन संभवतः इंगित करते हैं कि 7वीं-8वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास का एक नया चरण शुरू हो रहा था। हालाँकि हमारा यह सोचना गलत होगा कि पिछले युग से इसमें कोई आमूल परिवर्तन आ गया था।

एक और महत्वपूर्ण सवाल है जो आप स्वयं ही उठाना चाहेंगे। इतने सुदूर अतीत में जो ऐतिहासिक घटनाएँ घटीं और जो परिवर्तन हुए उनके बारे में हम कैसे जानते हैं? दूसरे शब्दों में, जब इतिहासकार अतीत के बारे में लिखते हैं तो उसके पीछे क्या आधार रहता है, जबकि वे अतीत को देख नहीं सकते। इसका सहज उत्तर यह है कि सभी युगों के मानव-समाज अपने पीछे अपने रहन-सहन से संबंधित कुछ प्रमाण और कुछ संकेत छोड़ गए हैं। उदाहरण के लिए, शिकारी तथा भोजन संग्रह करने वाले समाज के रूप में रहने वाले मानव-समुदाय अपने पीछे पत्थर के हथियार छोड़ गए हैं जिनका वे इस्तेमाल करते थे। इसी तरह का एक दूसरा प्रमाण है वे चित्र, जो उन्होंने अपनी गुफाओं की दीवारों पर चित्रित किये। वास्तव में, इस प्रश्न का इस तरह हल देना भी इतना सहज नहीं है। हमें यह खोजना होगा कि प्राचीन मानव ने किस प्रकार के प्रमाण अपने पीछे छोड़े हैं और यह अध्ययन भी करना होगा कि उन प्रमाणों से क्या अर्थ निकाला जा सकता है। प्रायः इस तरह के प्रयत्नों में कई प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, एक पत्थर के औज़ार को सिर्फ देखकर यह नहीं बताया जा सकता कि वह कैसे बनाया गया। यह कार्य केवल एक प्रागैतिहासिक पुरातत्ववेत्ता ही कर सकता है जिसने इस तरह की सूचना प्राप्त करने की विशेषज्ञता प्राप्त की है। यदि कोई पुरातत्ववेत्ता प्राचीन शिकारियों द्वारा मारे गए प्राणियों के अवशेष खोज निकालता है तो उन प्राणियों की पहचान एक दूसरे विशेषज्ञ यानि जीवाष्मविज्ञानी द्वारा ही हो सकती है। इसी तरह, ऐसे अवशेषों के काल का पता लगाने के लिए एक और वैज्ञानिक की आवश्यकता होगी जो प्रयोगशाला में प्रयोगों के आधार पर उनका, काल-निर्धारण कर सके।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि केवल ऐसी वस्तुओं के बारे में जानकारी के लिए विविध प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता है। यदि आप किसी युग के बारे में अध्ययन कर रहे हो जिसमें धातु के सिक्के प्रयोग में आते थे, तो ''मुद्राशास्त्री'' उन सिक्कों के बारे में कई प्रकार के विवरण दे सकते हैं, लेकिन उन सिक्कों के धातु मिश्रण के बारे में सूचना वैज्ञानिक परीक्षण से कोई वैज्ञानिक ही दे सकता है। इसी तरह, केवल शिलालेख विशेषज्ञ ही अतीत की भाषाओं में, विविध लिपियों में लिखे शिलालेखों के अर्थ को स्पष्ट कर सकता है। मध्यकाल में दिल्ली के बादशाह फ़िरोज़ शाह तुगलक दिल्ली में अशोक-सतंभों को लाए, जिन पर किसी अपरिचित लिपि में लेख खुदे हुए थे (आप इस तरह का एक स्तंभ दिल्ली के फिरोज़ शाह-कोटला में अब भी देख सकते हैं)। लेकिन उस समय के विद्वान भी उन अक्षरों को नहीं पढ़ सके। कई शताब्दियों के बाद ही अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी के एक कर्मचारी जेम्स प्रिंसेप ने कड़े परिश्रम के बाद अंततः उन शिलालेखों एवं अन्य कई अशोक शिलालेखों की लिपि को पहचाना।

इस प्रकार के उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि अतीत के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए इतिहासकारों को कितना परिश्रम करना पड़ता है। पुराने समाज की वस्तुओं के अवशेष तथा अभिलेख जिनसे इतिहासकार सूचना प्राप्त करते हैं, इतिहास के स्रोत कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, आप जान चुके हैं कि शिकारी/संग्रहर्ता समुदायों ने अपने पीछे कोई लिखित अभिलेख नहीं छोड़े हैं, क्योंकि उन्हें लिखने की कला नहीं आती थी। यहाँ तक कि लेखन

कला का विकास हो जाने पर भी सभी लिखित अभिलेखों की प्रकृति समान नहीं थी। इसलिए इतिहासकारों को उन सभी स्रोतों पर निर्भर होना पड़ा जो उन्हें प्राप्त हुए और उसी आधार पर अतीत का निर्माण भी हुआ। उस अतीत के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का यह मतलब नहीं है कि इतिहासकारों ने उन स्रोतों से उपलब्ध सामग्री एवं सूचनाओं का मात्र उल्लेख किया, बल्कि उसका तार्किक विश्लेषण भी किया तथा उसे सुरूचिपूर्ण एवं रोचक ढंग से भी प्रस्तुत किया जिससे हम उस विषय-वस्तु या तत्वों को समझ सकें, जो प्राचीन युग से आज तक बचे हुए हैं एवं सुरक्षित हैं। साथ ही उन्होंने इनमें आपसी संबंध स्थापित करने के भी प्रयास किए। अगर पुरातत्ववेत्ता आज प्रस्तुत युग के विभिन्न हथियारों को हमारे समक्ष रख दें, तो हम यह बताने में समर्थ नहीं होंगे कि इनको किस प्रकार बनाया गया था या इनका प्रयोग किस आवश्यकता के लिए किया गया। साथ ही हमारे लिए यह बताना भी असंभव होगा कि जिस काल में ये हथियार बने, उसके प्रयोजनों की तुलना में दूसरे काल में बने हथियारों से ये किन-किन रूपों में भिन्न हैं, यानि पर्यावरण में, भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया में, मानव समुदाय के सामाजिक संगठन में और यहाँ तक कि परम्पराओं एवं विश्वासों में भी। एक अन्य उदाहरण लीजिए। लिखित सामग्री के अध्ययन से तथा पुरातत्ववेत्ताओं की खोजों से पता चलता है कि गंगा घाटी में शहरों का छठी शताब्दी बी.सी.ई. तथा चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के मध्यकाल में उदय हो गया था। चूँकि यह इस प्रदेश के इतिहास में एक नया आयाम है, आवश्यकता इस बात की है कि इतिहासकार इस दृष्टिकोण से हमें समझाएँ कि जो शहर उदित हुए उनका संदर्भ उस युग की सामाजिक स्थिति से कहाँ तक जुड़ता है और वे इससे क्या निष्कर्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं।

इस प्रकार की व्याख्याओं एवं तार्किक विश्लेषण से इतिहासकार हमें सोचने के लिए तथा विविध प्रकार के प्रश्न पूछने के लिए उकसा सकते हैं, जो अतीत को समझने में मदद दे सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य ज्ञान के क्षेत्रों के समान इतिहास लेखन भी बदलता रहता है, उसकी दृष्टि बदलती है। इससे कुछ हद तक स्पष्ट हो सकता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में इतिहासकार क्यों सिर्फ राजाओं और उनकी उपलब्धियों के बारे में लिखने से दूर हट गये और किस तरह उन्होंने समाज के विविध आयामों और उसमें हुए परिवर्तनों के कारकों को नज़र में रखा। इतिहासकारों के बीच में भी व्याख्या और विवरण में अंतर हो सकता है, विविध ऐतिहासिक घटनाक्रमों के वर्णन में मतभेद हो सकता है। पुरातत्ववेत्ता, शिलालेख विज्ञानी, मुद्राशास्त्री तथा अन्य लोगों द्वारा प्रकाश में लाए गए नए स्रोतों के साथ अब चीज़ों को देखने की नई दृष्टि है और वे नए प्रश्न हैं जिनके कारण अतीत के संबंध में हमारे ज्ञान का विस्तार होता जा रहा है और यह ज्ञान इस नयी दृष्टि के कारण सीमित नहीं रहता।

प्राचीन भारतीय इतिहास का यह पाठ्यक्रम, जो आप पढ़ने जा रहे हैं, चार खंडों में विभाजित है। हर खंड में कई इकाइयाँ हैं। हर खंड में किसी युग विशेष से संबंधित एक प्रमुख विषयवस्तु है जो हमारे देश के प्राचीन काल के इतिहास के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

खंड 1 एक व्यापक श्रेणी है जो भारत के भौगोलिक क्षेत्रों, प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों, क्षेत्रीय संदर्भ में पुरापाषाण लोगों के उपकरणों, प्रौद्योगिकी, समाज और कला जैसे मुद्दों से संबंधित है। भारत के क्षेत्रों को ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टिकोण से देखा गया है। इकाई (1) मनुष्यों और भूमि के बीच घनिष्ठ संबंध की पड़ताल करती है। इतिहासकारों और भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक भूभाग की कैसे कल्पना की है और पूर्वजों के बीच इस भूभाग की चेतना कैसे मौजूद थी, इस विषय से इकाई में संबंधित कुछ मुद्दे हैं। यह प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण स्रोतों पर भी चर्चा करती है। इस खंड की अन्तिम दो इकाइयाँ (2 एवं 3) प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के बारे में चर्चा करती हैं।

उत्पत्ति और कालक्रम की चर्चा से आगे बढ़ते हुये, इस बात पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न पुरातात्विक संस्कृतियों की प्रकृति और उनके द्वारा प्रकट किए गए परिवर्तन क्या थे। इसका विश्लेषण अनुभवजन्य दत्त-सामग्री (empirical data), उत्खननों और उनसे प्राप्त मूर्त सामग्री (tangible material remains) पर आधारित है। इतिहास का प्रागैतिहासिक काल एक महत्वपूर्ण चरण है जो शीघ्रांतशीघ्र इतिहास को पूर्ववृत्त प्रदान करता है।

खंड-II भारतीय उपमहाद्वीप की आद्य-ऐतिहासिक संस्कृतियों की ओर संक्रमण की पड़ताल करता है। इस विषय के तहत पहली इकाई (4) हमें कृषि की शुरुआत और पशुओं के पालतु बनने के चरण से अवगत कराती है। पुरापाषाण जीवनकाल से इन क्रमिक परिवर्तनों ने मनुष्यों, जानवरों और भूमि के बीच नए प्रकार के संबंध स्थापित किये और ये बदलाव क्रांतिकारी परिवर्तन बने। अंतिम तीन इकाइयाँ (5, 6, 7) हड़प्पा सभ्यता से संबंधित हैं। 1920 के दशक में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में हुई खुदाई ने भारतीय इतिहास के बारे में हमारी धारणा बदल दी। 2600 बी.सी.ई. के काल के नए शहरों की खोज की गई जो कि वैदिक काल से भी पहले के थे। ये इकाइयाँ उन प्रक्रियाओं से निपटती हैं जिनके द्वारा शहरी केंद्र धीरे-धीरे विकसित हुए; उनके पूर्ववृत्त, नगर नियोजन, सामाजिक संरचना, व्यापार, धर्म और पतन किस प्रकार प्रकाश में आये।

खंड III दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के आरंभ से लेकर छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक रूपरेखा पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह खंड इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि परिवर्तन विकास की दिशा में एक निरंतर संचलन नहीं था। उच्च शहरीकृत हड़प्पा संस्कृति का ह्रास हुआ और धीरे-धीरे उपमहाद्वीप के सभी प्रमुख क्षेत्रों में कृषि आधारित ग्रामीण संस्कृतियों का गठन हुआ। छोटे पैमाने पर खेती पर आधारित छोटी बस्तियाँ बाद की अवधि में नियमित ग्रामीण बस्तियों में तब्दील हो गईं। शुरू में छोटी खेतीहर बस्तियाँ ताम्रपाषाण संस्कृति से संबंधित थीं, लेकिन पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. की शुरुआत से लोहे की विभिन्न संस्कृतियों का उद्भव हुआ। उदाहरण के लिए, ऊपरी गंगा घाटी की चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति और प्रायद्वीपीय भारत की महापाषाण संस्कृतियाँ। विभिन्न संस्कृतियों पर इस धातु के प्रभाव का अभी तक ठीक से आंकलन नहीं किया जा सका है, लेकिन इस बात को बलपूर्वक माना जा सकता है कि ग्राम्य जीवन की सभी महत्वपूर्ण सामग्री, जैसे कि खेती की तकनीकों (यहां तक कि सिंचाई की भी), प्रमुख फसलों की किस्मों का उत्पादन जो आज भी किया जाता है और पालतू पशुओं के साथ खेती का संयोजन दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. और पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. के बीच उपमहाद्वीप की कोई न कोई क्षेत्रीय संस्कृतियों में मौजूद था। यह व्यापक सांस्कृतिक स्वरूप, निश्चित रूप से, पशुचारणता जैसे अन्य सांस्कृतिक स्वरूपों के साथ सह-अस्तित्व में था और हमें यह भी याद रखना चाहिए कि कृषि समुदायों के उद्भव के बावजूद शिकार और संग्रह करना जीवन का एक तरीका बना रहा। दूसरे, गंगा घाटी में पहली सहस्राब्दि बी.सी.ई. से ऐतिहासिक परिवर्तन की गति अचानक तेज हो गई। पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ वैदिक ग्रन्थों का उपयोग समाज, अर्थव्यवस्था, प्रारंभिक वैदिक समाज और उत्तर वैदिक काल के पुनर्निर्माण के लिए किया जाता है। एक नए प्रकार का समाज उभरा, जिसका अर्थ था कि इसमें रहने वाले लोगों के जीवन के बारे में नये प्रश्न उभरे, जीवन में अर्थ की तलाश थी और नई आकाक्षाएं थीं। *उपनिषदों,* बुद्ध और महावीर की शिक्षाओं और इस अवधि के विभिन्न प्रकार के विचारों ने जीवन की समस्याओं के लिए उत्तर मांगे। इसके बाद की शताब्दियों में बौद्ध और जैन धर्म तेजी से फैला।

अंतिम खंड IV छठी शताब्दी बी.सी.ई. से मौर्य काल के अंत तक की अवधि से संबंधित है। वैदिक काल से हो रहे बदलाव छठी शताब्दी बी.सी.ई. में परिपक्व हुए। *महाजनपद* उभरे

और राजतंत्र व गणसंघ बने। 'दूसरा शहरीकरण' फला फूला। इतिहासकार इस चरण से भारतीय इतिहास में ऐतिहासिक काल की शुरुआत मानते हैं। धात्विक धन, व्यापार, शक्तिशाली *गहपतियों* और *सेट्ठियों,* शहरों और कस्बों के उदय ने लोगों में अलगाव की भावना पैदा की। एक जटिल सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न हुई जिसने विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संबंधों को परिभाषित किया। *चतुर्वर्ण* प्रणाली जो उत्तर-वैदिक चरण में दिखाई देती है, एक सैद्धांतिक ढाँचा प्रदान करती है जिसमें समाज संगठित था। **महाजनपदों** के बीच वर्चस्व की लड़ाई के परिणामस्वरूप मगध सबसे शक्तिशाली **महाजनपद** के रूप में उभरा। इस समय भारत का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महान फ़ारसी साम्राज्य को उत्तरी ग्रीस (यूनान) के मैसेडोनिया के सिकंदर की बढ़ती सैना ने कुचल दिया था। वह पंजाब के मैदानों में आगे बढ़ा और इन क्षेत्रों के योद्धाओं के साथ वीरतापूर्ण लड़ाई लड़ी। फ़ारसियों और यूनानियों के संपर्क ने भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग को फ़ारसी और यूनानी सांस्कृतिक प्रभावों के लिए खोल दिया। बाद में, मौर्यों ने एक विशाल साम्राज्य का आधार रखा जिसमें उत्तर-पश्चिमी भाग भी शामिल था। अंतिम दो इकाइयाँ (18 और 19) प्राचीन भारत में लिंग की स्थिति व पर्यावरण, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्राचीन भारतीयों की उपलब्धियों को दर्शाती हैं।

इतिहास वैकल्पिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-02 को लगभग बीस साल पहले लिखा गया था। जब यह पहली बार प्रकाशित किया गया था तो विशेषज्ञों, संयोजक और पाठ्यक्रम तैयार करने वाले दल के विशिष्ट पैनल के सराहनापूर्वक काम की वजह से यह प्रशंसा का पात्र बना। अब इग्नू एक नया पाठ्यक्रम ला रहा है जो प्रारंभिक भारतीय इतिहास के पठन में पर्याप्त बदलावों को संबोधित करेगा। 1990 के दशक के बाद से बहुत अधिक शोध सामग्री प्रकाश में लाई गयी है। मौजूदा आंकड़ों की नई व्याख्याओं को भी प्रारंभिक भारत के विभिन्न मुद्दों पर नए सिरे से देखने की आवश्यकता है। वर्तमान पाठ्यक्रम में ऐसे बदलावों को शामिल करने का प्रयास किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1
प्राचीन भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भौगोलिक क्षेत्र[1] और स्रोत*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भौगोलिक क्षेत्र

1.2.1 विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयाँ

1.3 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

1.4 क्षेत्रों की प्रकृति

1.5 प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के स्रोत

1.5.1 साहित्यिक स्रोत

1.5.2 पुरातत्व

1.5.3 विदेशी वृतान्त

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जानेंगे कि :

- किसी देश के इतिहास के अध्ययन में उसकी भौतिक विशेषताओं की समझ क्यों आवश्यक है;
- हम इतिहास के छात्रों के रूप में भौतिक विशेषताओं को कैसे देखते हैं;
- प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत क्या हैं; तथा
- साहित्यिक स्रोतों के उपयोग से जुड़ी समस्याएं क्या हैं।

1.1 प्रस्तावना

बिना भूगोल के इतिहास प्रायः अधूरा रहता है और अपने एक प्रमुख तत्व से वंचित हो जाता है। यानि भूभाग/भूमंडल की अवधारणा के अभाव में इतिहास अपने लक्ष्य से भटक सकता है। यही कारण है कि इतिहास को मानव जाति के इतिहास और पर्यावरण के इतिहास, दोनों ही रूपों में देखा जाता है। इन दोनों को अलग करना कठिन है। मानव इतिहास और पर्यावरण का इतिहास दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनुष्यों और प्रकृति के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान बहुत समय पहले शुरू हुआ, जहां प्रत्येक ने दूसरे को प्रभावित किया। भारतीय उपमहाद्वीप में रेगिस्तान से लेकर उच्च वर्षा के क्षेत्रों और विशाल

[1] यह भाग ई.एच.आई.-02, खंड-1 से लिया गया है।

*इकाई के इस भाग को डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू द्वारा लिखा गया है।

जलोढ़ मैदानी इलाकों से लेकर ऊँचे पहाड़ों और चट्टानी पठार भूमियों तक विविध परिस्थितियां हैं। पर्यावरण का अर्थ है, ''विशेष रूप से लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले भौतिक परिवेश और परिस्थितियाँ'' (वर्तमान अंग्रेज़ी का संक्षिप्त शब्दकोश, 8वां संस्करण, 1990)। मिट्टी, वर्षा, वनस्पति, जलवायु और पर्यावरण मानव समाज के विकास पर काफ़ी प्रभाव डालते हैं।

इस इकाई के बाद का हिस्सा विभिन्न प्रकार के स्रोतों का परिचय देता है जो इतिहासकार अतीत के पुनर्निर्माण के लिए उपयोग करते हैं। तीन मुख्य प्रकार के स्रोत हैं : साहित्यिक, पुरातात्विक और विदेशी वृतान्त।

1.2 भौगोलिक क्षेत्र

भौतिक विशेषताओं का वर्णन करने के पीछे मुख्य उद्देश्य आपको भारत के विभिन्न हिस्सों की स्थलाकृति में दिखाई देने वाली भिन्नताओं से परिचित कराना है। किसी भी क्षेत्र के भौतिक भूगोल और उसके बसावट के प्रतिरूपों (Settlement patterns) के बीच एक गहरा रिश्ता है।

भू-आकृतिक लक्षणों के आधार पर उपमहाद्वीप को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1) हिमालय के पर्वतीय प्रदेश,
2) सिंधु-गंगा के मैदान,
3) प्रायद्वीपीय भारत।

यह माना जाता है कि हिमालय पर्वत पृथ्वी की सबसे अंतभव पर्वत श्रृंखला है। हिमालय की पर्वतीय श्रृंखलाओं के अपक्षय और भूमि कटाव के कारण जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी निरंतर बह कर भारी मात्रा में मैदानी क्षेत्रों में आती है। हिमालय की बर्फ के पिघलते रहने से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र, इन तीन बड़ी नदियों में निरंतर जल प्रवाह बना रहता है।

सिंधु के मैदानों में भारतीय उपमहाद्वीप की पहली सभ्यता का विकास हुआ जबकि गंगा के मैदानों में पहली सहस्राब्दि बी.सी.ई. से नगरीय जीवन, राज्य, समाज और साम्राज्य संबंधी ढांचे का पोषण और विकास हुआ।

उत्तर के मैदानों और प्रायद्वीपीय भारत को एक विशाल मध्यवर्ती क्षेत्र, जिसे मध्य-भारत कहा जा सकता है, अलग करता है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र गुजरात से लेकर पश्चिमी उडिशा तक लगभग 1600 किलोमीटर तक फैला हुआ है। राजस्थान की अरावली पहाड़ियाँ सिंधु के मैदानों को प्रायद्वीप से अलग करती है। मध्यवर्ती क्षेत्र में विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां और छोटा नागपुर का पठार है जो बिहार, पश्चिमी बंगाल, उडिशा, झारखंड और छतीसगढ़ के कुछ क्षेत्रों तक फैला है।

मध्यवर्ती क्षेत्र या मध्य भारत के दक्षिणी सिरे पर वह भू-रचना शुरू होती है जिसे प्रायद्वीपीय भारत कहा जाता है। इसमें चार प्रमुख नदियां हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियां हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन नदियों के कारण इस पठारी क्षेत्र में जलोढ़ मैदान बने और इन मैदानों तथा नदियों के दहानों (deltas) में मूल आवास क्षेत्रों का विकास हुआ। यहां दीर्घ काल तक सांस्कृतिक विकास की धारा प्रवाहित हुई जो प्राचीन काल से प्रारंभ होकर मध्य काल से होते हुए आधुनिक काल तक निरंतर बहती रही।

मध्य भारत में बहने वाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पर्वतीय मध्य भारत में लम्बी दूरी तय करने के बाद ये नदियां गुजरात के अरब सागर में गिरती हैं।

उपमहाद्वीप के इस भाग की प्रमुख विशेषता दक्कन का पठार है। यह उत्तर में विंध्य पर्वत श्रेणियों से लेकर कर्नाटक की दक्षिणी सीमाओं तक फैला हुआ है। महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के भू-भागों में काली मिट्टी विशेष रूप से उपजाऊ है, क्योंकि इसमें नमी बनी रहती है और इस जमीन को स्वहलित भूमि यानी ऐसी भूमि माना जाता है जिसमें जुताई की आवश्यकता नहीं होती। यह भूमि कपास, ज्वार, मूंगफली और तिलहन की अच्छी फसल देती है। पश्चिम और मध्य भारत में प्रारंभिक कृषि संस्कृतियां (ताम्र पाषाण संस्कृति) इसी क्षेत्र में उदित हुई।

1.2.1 विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयाँ

अभी तक हमने मोटे तौर पर भौगोलिक विभाजनों की विशेषताओं का सामान्य आधार पर विवेचन किया है। अब हम उन विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयों को लेंगे जो आमतौर पर भाषा पर आधारित विभाजनों को पुष्ट करती है, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनकी प्राकृतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश

हिमालय पर्वतों को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है :

- पूर्वी हिमालय,
- पश्चिमी हिमालय, और

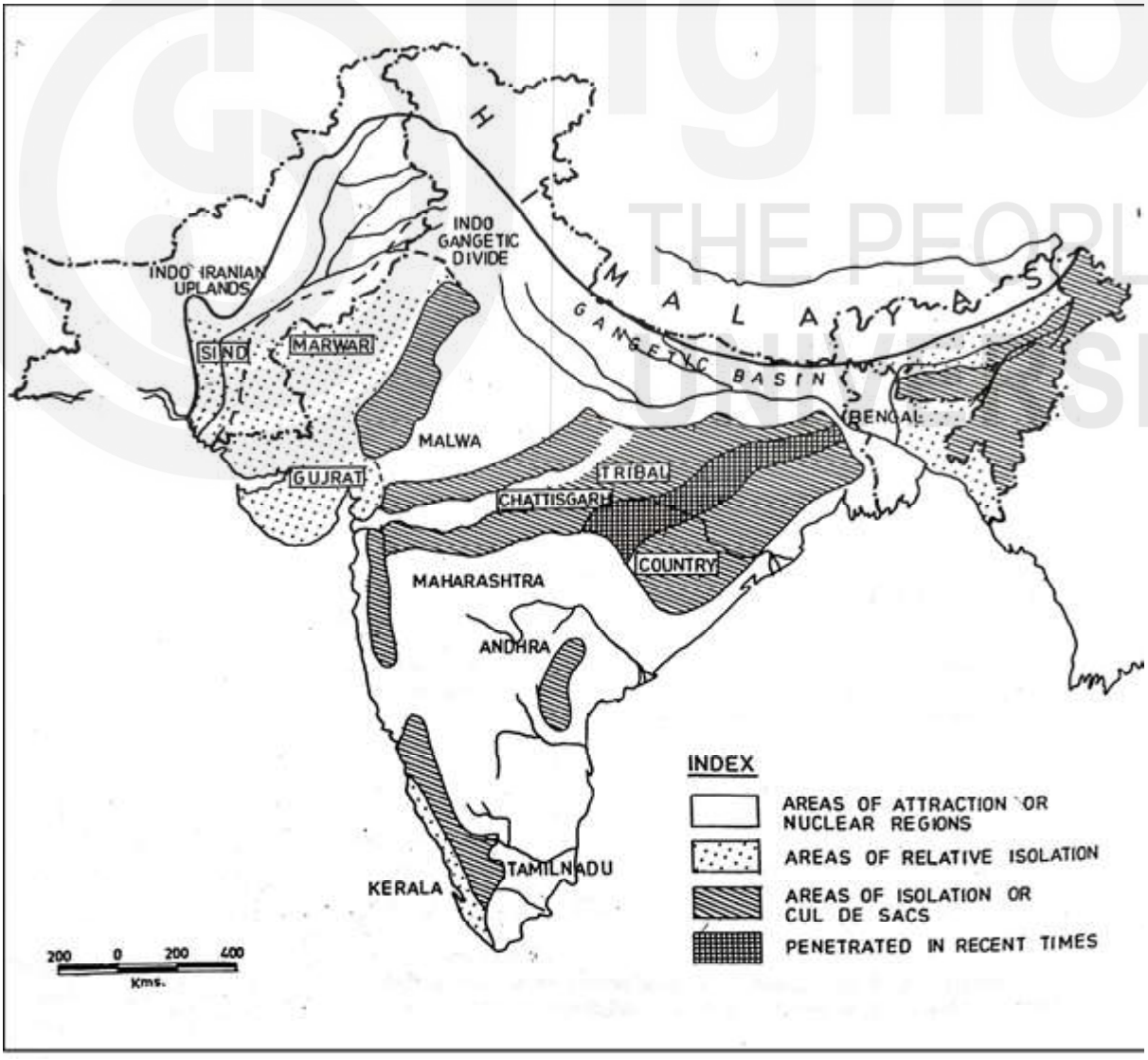

मानचित्र : भारत के प्राकृतिक क्षेत्र। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-1.

- मध्यवर्ती हिमालय।

पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखला ब्रह्मपुत्र के पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में असम से लेकर दक्षिण चीन तक फैली हुई है। हालांकि पूर्वी हिमालय पर्वतमाला के बीच से गुज़रने वाले मार्ग दुर्गम हैं, फिर भी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों में दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण चीन से सांस्कृतिक प्रभावों का आना नहीं रूका।

मध्यवर्ती हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं, जो भूटान से चित्राल तक फैली हुई हैं, तिब्बत के विशाल पठार की सीमा पर स्थित हैं। भारत और तिब्बत के बीच व्यापार तथा अन्य प्रकार के संबंध इसी सीमा प्रदेश के माध्यम से बने रहे। संकरी हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला हिमालय से दक्षिण पश्चिम की ओर गांधार प्रदेश को घेरती हुई अफ़ग़ानिस्तान में दूर तक फैली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान का गहरा संबंध पूर्वी ईरान से है। लेकिन दक्षिण-पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान सांस्कृतिक रूप से नवपाषाण काल से ही भारतीय

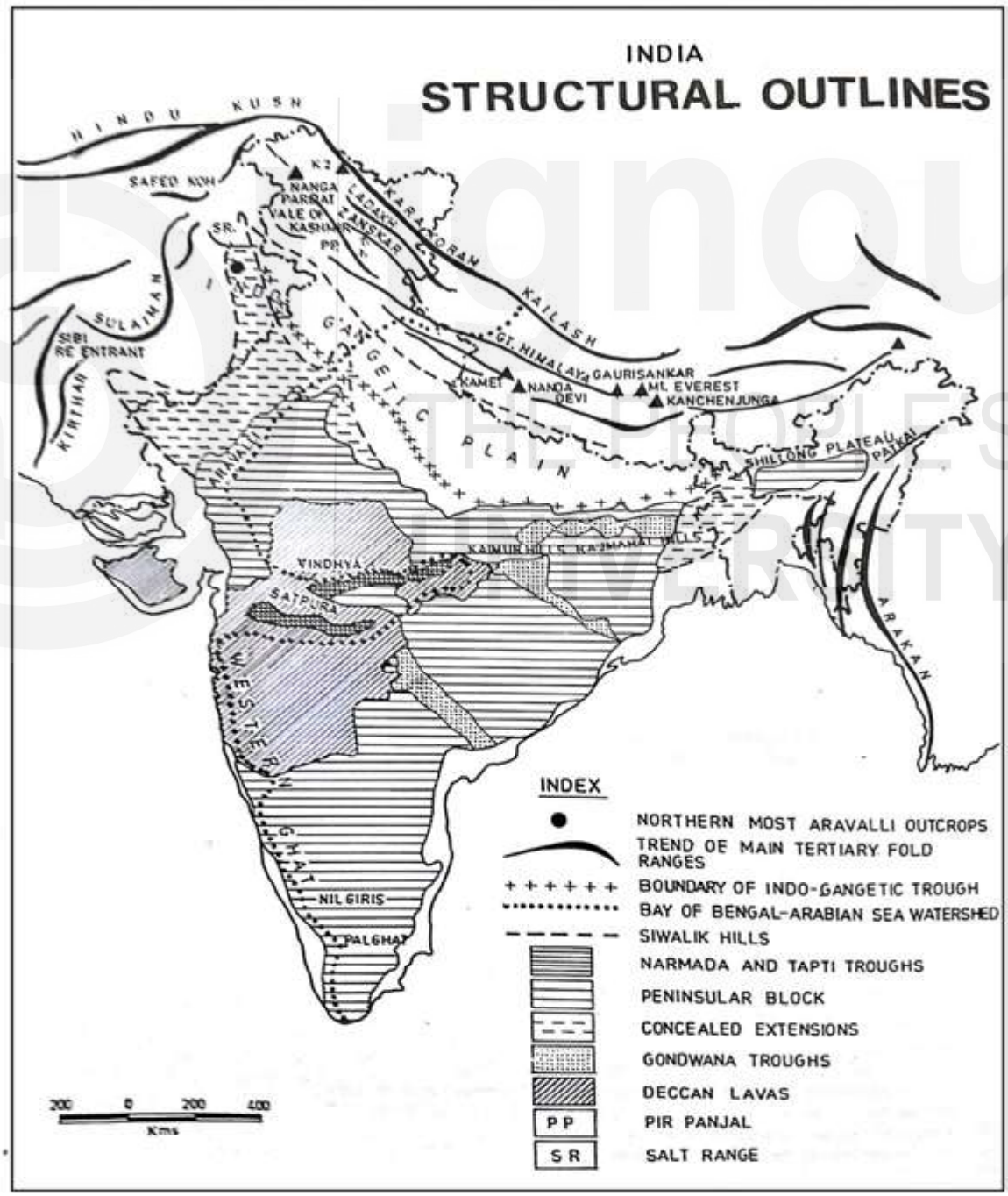

मानचित्र : भारत का संरचनात्मक रेखाचित्र। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-1.

उपमहाद्वीप के निकट रहा है। खैबर दर्रा और अन्य दर्रे तथा काबुल नदी इस क्षेत्र को सिन्धु के मैदानों से जोड़ते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अफ़ग़ानिस्तान के इस भाग में स्थित शोर्तुगई हड़प्पा की सभ्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बाह्य-केन्द्र था। काबुल और कन्धार जैसे प्राचीन नगर ईरान और भारत के बीच व्यापार मार्गों पर स्थित थे।

वे सभी प्रमुख मार्ग जो अफ़ग़ानिस्तान से होकर भारत के मैदानों को ईरान और मध्य एशिया से जोड़ते हैं, गोमल, बोलन और खैबर दर्रों से होकर जाते हैं। ऐतिहासिक कालों अथवा उससे भी पहले से व्यापारी, हमलावर और विविध सांस्कृतिक प्रभाव इन सभी प्रमुख मार्गों से होकर भारत आते रहे। यूनानी, शक, कुषाण, हूण आदि इन्हीं मार्गों से भारत आए। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के अन्य प्रभाव अफ़ग़ानिस्तान और मध्य-एशिया तक इन्हीं दर्रों

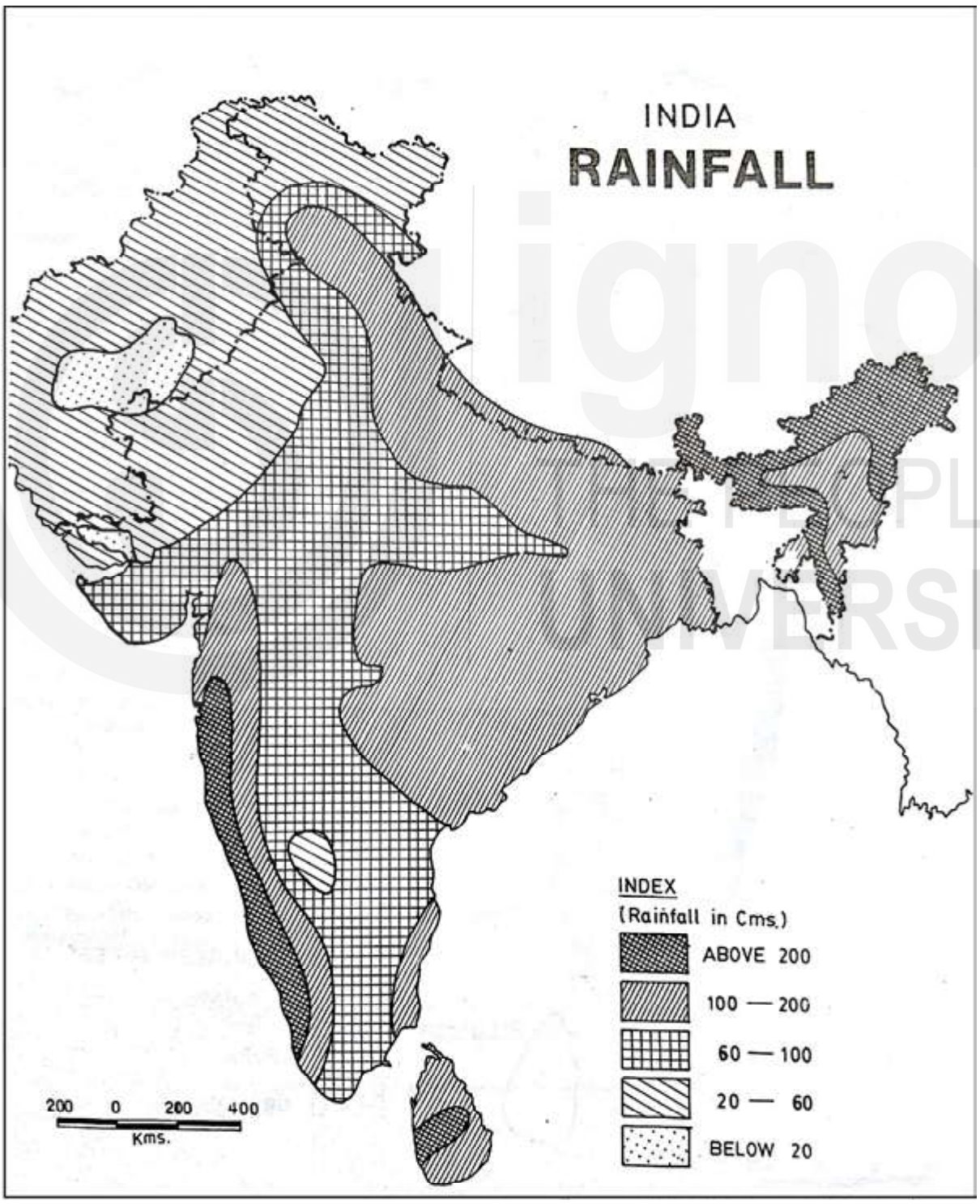

मानचित्र : भारत के वर्षा क्षेत्र। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-1.

से होकर पहुँचे। इस तरह ऐतिहासिक रूप से अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र महत्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र रहे हैं।

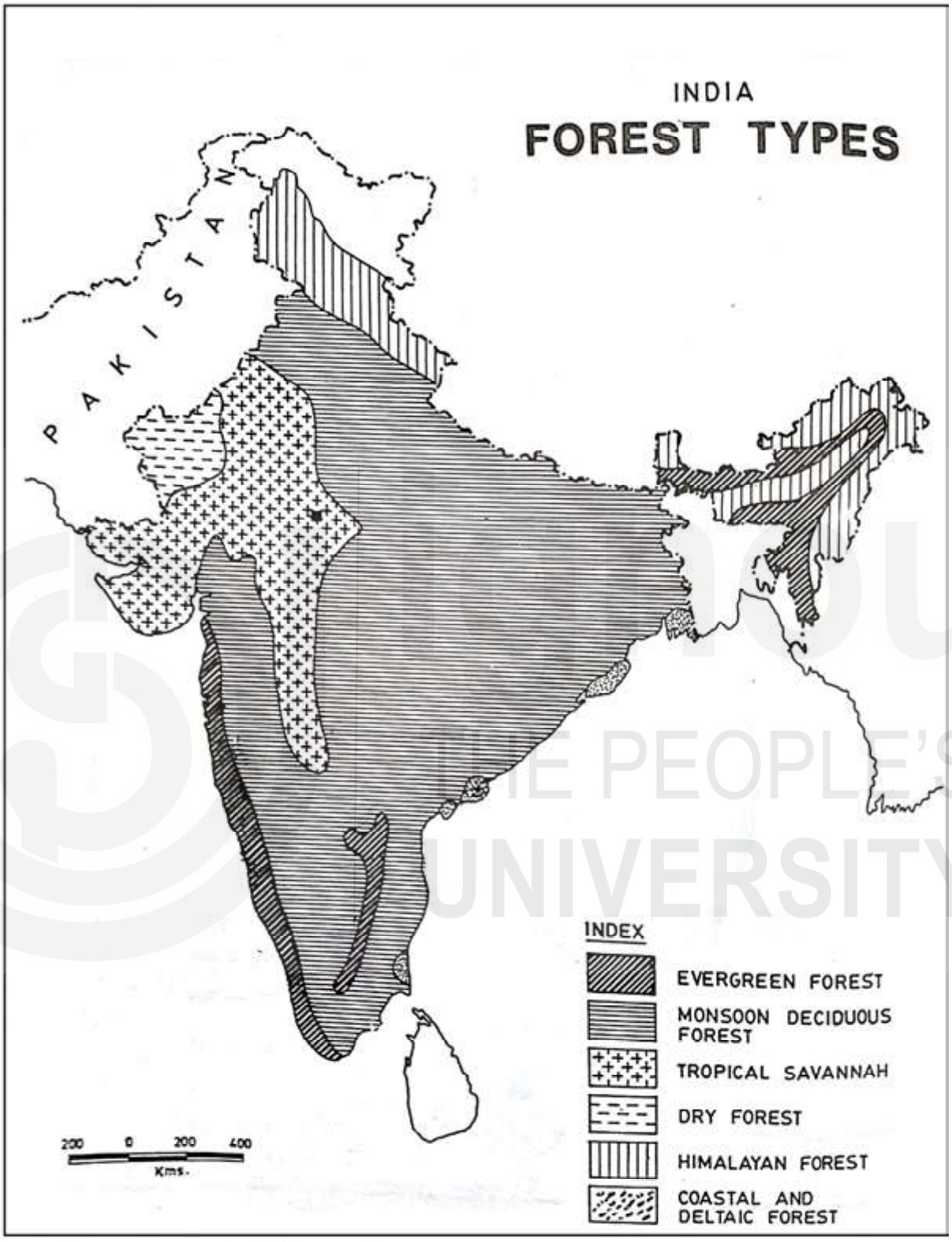

मानचित्र : भारत के वनों के प्रकार। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-1.

सिंधु के मैदान

इन दर्रों से निकलने वाले ये मार्ग सिंधु के उपजाऊ मैदानों की तरफ़ ले जाते हैं। इस मैदानी क्षेत्र को दो भागों में बांटा जा सकता है:

- पंजाब, और
- सिंध।

पंजाब (इस समय भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित) का शाब्दिक अर्थ है पांच नदियों की भूमि। ये हैं रावी, ब्यास, चेनाब, झेलम और सतलुज। विस्तृत जलोढ़ मैदान के बीच में बहने वाली सिंधु नदी की पाँच सहायक नदियों ने इस क्षेत्र को उपमहाद्वीप का बहु-धान्य प्रदेश बना दिया है। पंजाब विभिन्न संस्कृतियों का मिलन-स्थल और उनके परस्पर एकीकृत होने का स्थान रहा है।

सिंधु घाटी का निचला क्षेत्र और दहाता मिलकर सिंध प्रदेश का निर्माण करते हैं। सिंध प्रदेश सिंधु नदी का प्रदेश है और बड़ी मात्रा में चावल और गेहूँ उत्पन्न करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिंधु मैदान में तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के उत्तरार्ध व दूसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के पूर्वार्ध के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नगरीय संस्कृति पनपी। इनके दो प्रमुख नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो क्रमशः पंजाब (पाकिस्तान) और सिंध में स्थित हैं।

गांगेय उत्तरी भारत

गंगा के मैदानी क्षेत्र को तीन उप-क्षेत्रों में बांटा जा सकता है :

- ऊपरी क्षेत्र,
- मध्य क्षेत्र, और
- निचला क्षेत्र।

पश्चिम और मध्य उत्तर प्रदेश के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में अधिकांश दोआब का इलाका शामिल है। यह संघर्ष और सांस्कृतिक संश्लेषण का क्षेत्र रहा है। हड़प्पा संस्कृति के इस क्षेत्र तक फैले होने के बहुतायत में साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। यह क्षेत्र चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति का केन्द्र भी था और उत्तर-वैदिक काल में हलचल भरी गतिविधियों का केन्द्र था।

प्रयागराज (प्राचीन प्रयाग) दोआब की सीमा पर गंगा और यमुना नदियों के संगम पर स्थित है। गांगेय मैदान का मध्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैला हुआ है। यह वही क्षेत्र है जहां प्राचीन कोसल, काशी और मगध स्थित थे। यह क्षेत्र छठी शताब्दी बी.सी.ई. से ही नगरीय जीवन, मौद्रिक अर्थव्यवस्था और व्यापार का केन्द्र रहा है। इस प्रदेश ने मौर्य साम्राज्य के विस्तार को आधार प्रदान किया और यह भू-प्रदेश राजनीतिक दृष्टि से गुप्तकाल (पांचवी शताब्दी सी.ई.) तक महत्वपूर्ण बना रहा।

गंगा के मैदानों का ऊपरी और मध्य क्षेत्र भौगोलिक रूप से उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में मध्य भारत की पर्वत श्रृंखलाओं से सीमाबद्ध होता है। मैदान का निचला क्षेत्र बंगाल प्रान्त तक फैला हुआ है। बंगाल का विस्तृत मैदान गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है।

अन्य वृहद बसावट वाले क्षेत्रों की तुलना में गंगा का मैदान अनेक घनी बस्तियों वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या घनत्व भी यहां अपेक्षाकृत अधिक रहा है। पहली सहस्त्राब्दि बी.सी.ई से ही यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता का मुख्य केन्द्र रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्रदेश की यही स्थिति बनी हुई है। बंगाल के मैदान से लगी हुई ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित दूर तक फैली असम घाटी है। यह 600 किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र में फैली हुई है। सांस्कृतिक रूप से असम बंगाल के निकट है। लेकिन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश उडिशा की तरह देर से विकास प्रक्रिया में आने वाला प्रदेश है।

पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत

मध्य भारत एक पूरी तरह से भिन्न प्रकार का क्षेत्र है और उसमें कोई भी ऐसा विशेष स्थान नहीं है जिसे केन्द्र स्थान मान कर बात की जा सके। अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में राजस्थान राज्य का दक्षिण-पूर्वी भाग मालवा उपक्षेत्र का एक अंग है। इस प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है। इसलिए यहां सिंचाई के अभाव के बावजूद अच्छी फसलें हो जाती हैं। इस प्रदेश में ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियां काफ़ी संख्या में फैली हुयी हैं। इसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह प्रदेश हड़प्पा-कालीन समुदायों और मध्य भारत तथा उत्तरी दक्कन के दूसरे ताम्र पाषाण युगीन समुदायों के बीच पुल के रूप में रहा होगा।

मध्य भारत आज मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्यों के नाम से जाना जाता है। मध्य भारतीय क्षेत्र, जिसमें विशेष रूप से दक्षिण बिहार, पश्चिम उडिशा और पूर्वी मध्य प्रदेश आते हैं, आदिवासी बहुल क्षेत्र है। इस प्रदेश के आदिवासी निकटवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक प्रभाव में आकर प्रारंभिक ऐतिहासिक कालों से, या कहें कि गुप्त काल से ही, भारतीय समाज के प्रमुख जाति-कृषक आधार वाले ढांचे से जुड़ते रहे।

गुजरात मध्य भारत क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा हुआ है : सौराष्ट्र, अनर्त (उत्तरी गुजरात) और लाट (दक्षिण गुजरात)। गुजरात का मध्यवर्ती प्रायद्वीप काठियावाड़ कहलाता है। इस प्रदेश का एक और प्राकृतिक भाग कच्छ के रण का निचला इलाका है। मानसून के दिनों में कच्छ का रण दलदलीय क्षेत्र में बदल जाता है। हालांकि गुजरात एक अलग-थलग क्षेत्र प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में यह हड़प्पा कालीन समय से ही निरंतर प्राचीन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। अपनी संरक्षित स्थिति और लंबी तट रेखा के कारण गुजरात 4000 वर्षों से अधिक समय से तटीय (समुद्र तटीय) और विदेशी व्यापार का केन्द्र रहा है।

मध्य भारत पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी छोर पर गंगा के दहाने के दक्षिण-पश्चिम में उडिशा के तटवर्ती मैदान हैं। समृद्ध कृषि आधार वाला उपजाऊ तटवर्ती मैदान मानव गतिविधि का स्थल और सामाजिक सांस्कृतिक विकास का केन्द्र रहा है। उडिशा ने अपनी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान देर से पहली शताब्दी सी.ई. में बनाई।

प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत की सीमाएं इसको घेरने वाले तटवर्ती मैदानों और दक्कन के पठार से निर्धारित होती है। दक्क्न का पठार चार प्रमुख भागों में बंटा हुआ है। ये भाग महाराष्ट्र, आंध्र, तेलंगाना और कर्नाटक राज्यों में पड़ते हैं। दक्षिण-पश्चिम आन्ध्र के प्रारंभिक नव-पाषाण युगीन लोगों ने अनुकूल व्यवहार नीति के रूप में पशु चारण को अपनाया तो दक्कन ताम्र-पाषाण युगीन मानव समुदायों ने कृषि को अपना उद्यम बनाया।

सुदूर दक्षिण

दक्षिण में विस्तृत पूर्वी तटवर्ती मैदान और इससे जुड़े भीतरी प्रदेश तमिलनाडु में आते हैं। कावेरी का मैदान और इसका दहाना इस क्षेत्र का अधिकेन्द्र है। इस क्षेत्र की नदियां मौसमी हैं इसलिए यहां के किसान पल्लव-चोल कालों से ही सिंचाई के लिए तालाबों पर निर्भर रहते आए हैं। इन पारिस्थितिक विविधिताओं का उल्लेख, जिनके कारण विविध वैकल्पिक जीवन शैलियाँ अस्तित्व में आईं, इस भूमि के प्राचीनतम् साहित्य यानी *संगम* साहित्य में प्राप्त होता है।

पश्चिमी तटवर्ती मैदान भी सुदूर दक्षिण में मालाबार यानी आज के केरल राज्य तक फैला हुआ है। केरल में धान तथा अन्य फसलों के अलावा काली मिर्च तथा अन्य मसालों का

उत्पादन भी होता है। पश्चिम के साथ केरल इन मसालों का व्यापार उत्तर-मौर्य काल से ही करता आया है। भूमि से अपेक्षाकृत अलग-थलग केरल राज्य समुद्र की ओर से पूरी तरह से खुला हुआ है। यह एक रोचक सत्य है कि भारत में ईसाई प्रभाव और बाद में मुस्लिम प्रभाव समुद्र के माध्यम से ही आया।

1.3 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

यह याद रखना चाहिए कि इतिहास में क्षेत्रों के उद्भव की प्रक्रियाएं असमान रही हैं। अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा।

क्षेत्रों के असमान्य विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य-पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दक्कनी क्षेत्रों में नवपाषाण-युगीन पशुपालक काफ़ी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों की इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलतः विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिले हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में, जहां एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्राब्दि बी.सी.ई. में बसने लगे थे, वहीं दूसरी ओर दक्कन, आंध्र, तमिलनाडु, उडिशा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप से लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है। हालांकि उत्तर में गांगेय क्षेत्र बहुत पहले से ही बसावट का केन्द्र रहा, वही बीच के काफ़ी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियां कभी भी पूरी तरह नहीं बसी और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सभ्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुंची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफ़ी आसान रहा।

1.4 क्षेत्रों की प्रकृति

क्षेत्रों को वर्गीकृत करने का एक और तरीका उन्हें स्थायी केन्द्रीय क्षेत्रों, अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्रों तथा अलग-थलग क्षेत्रों के संदर्भ में हो सकता है। आइए हम इस तरह के वर्गीकरण की योग्यता देखें।

भारतीय इतिहास में काफ़ी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के चिरस्थायी केन्द्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत, कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे।

स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियां अधिकतर संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्व को और भी बढ़ा दिया है। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्वपूर्ण शक्ति-केन्द्रों के रूप में उभरे।

किंतु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी का महत्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण उस क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। मध्य भारत के अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे भीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की

पहाड़ियां बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूंकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप से हुआ अतः तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

क्या भूगोल और पर्यावरण को किसी प्रमुख कारण के रूप में लिया जा सकता है? सभी प्राकृतिक क्षेत्र केवल संभावनाओं के क्षेत्र हैं और इन संभावनों को उनके तकनीकी स्तर पर मानव हस्तक्षेप के माध्यम से साकार किया जाता है। अतः इतिहास को भौगोलिक नियतत्ववाद के अर्थ में देखा नहीं जा सकता है।

अगर हम हड़प्पा सभ्यता को देखें तो हम पाते हैं कि पर्यावरण और सामाजिक व्यवस्था के बीच सक्रिय संपर्क था, जिसके कारण पारिस्थितिक पतन हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप की पहली शहरी सभ्यता – हड़प्पा सभ्यता – उत्तर-पश्चिमी भाग में एक बहुत विस्तृत क्षेत्र में विकसित हुई। पुरातात्विक साक्ष्य इस समय के दौरान हल का व्यापक उपयोग दर्शाते हैं। उन्होंने गेंहू, जौ, पश्चिम ऐशियाई मूल की मसूर की फसलों के साथ चावल और दालों जैसी स्वदेशी वर्षा ऋतु की फसलें उगाना शुरू कर दिया था। इस प्रकार उत्पादित कृषि अधिशेष ने कई शहरों के उदय को संभव बनाया। अधिशेष ने सामग्री के प्रसंस्करण और विनिमय को बढ़ावा देने के साथ-साथ व्यापार और कारीगर गतिविधियों को बढ़ावा दिया। छोटे पैमाने पर वस्तु विनिमय के बनिस्पत लंबी दूरी के आदान-प्रदान ने अभिलेखों के रखरखाव को ज़रूरी बनाया और सिंधु घाटी की सभ्यता भारतीय इतिहास में साक्षरता का पहला सबूत बन गयी। इस सभ्यता के शहरी केन्द्रों के धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ने और गायब होने के लिए कई संभावित कारणों को जिम्मेदार ठहराया गया है। सरस्वती नदी का सूखना, सिंधु नदी में बाढ़, पुरावनस्पति विज्ञान के अनुसार जलवायु परिवर्तन, सिंचाई के कारण प्राकृतिक वनस्पति आवरण का ह्रास होना : इनमें से कुछ या सब ने मिलकर सिंधु सभ्यता का पतन किया।

विद्वान इस सभ्यता के पतन के मुख्य कारणों में से एक कारण–पारिस्थितिक असंतुलन– को महत्व दे रहे हैं। एक लंबे समय से निरंतर मानव और पशु उपयोग द्वारा परिदृश्य बिगड़ गया। निर्वाह आधार के घटने से सभ्यता की पूरी अर्थव्यवस्था पर दबाव पड़ा। यह शहरी योजना और लोगों के जीवन-स्तर में क्रमिक गिरावट से परिलक्षित होता है। धीरे-धीरे, हड़प्पा वासी प्रमुख क्षेत्रों से बेहतर निर्वाह की संभावनाओं वाले क्षेत्रों में चले गये।

बोध प्रश्न 1

1) भारत के तीन प्रमुख भूआकृतिक क्षेत्रों की चर्चा करें। हर एक पर पाँच पंक्तियां लिखें।

.....

.....

.....

.....

2) क्षेत्रों की प्रकृति पर एक लेख लिखें।

.....

.....

.....

.....

1.5 प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के स्रोत

स्रोत इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनके आधार पर हम अपने अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं। अतीत का कोई भी अवशेष स्रोत के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए हमारे पास विभिन्न स्रोत हैं। मोटे तौर पर, उन्हें तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

- साहित्यिक,
- पुरातात्विक,
- विदेशी वृतान्त।

साहित्यिक स्रोतों के अंतर्गत वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, महाकाव्य, *पुराण, संगम* साहित्य, प्राचीन जीवनियाँ, कविता और नाटक शामिल किए जा सकते हैं। पुरातत्व के अंतर्गत हम पुरातात्विक अन्वेषणों और उत्खनन के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले पुरालेखों, मुद्राओं और स्थापत्य पुरातात्विक अवशेषों पर विचार कर सकते हैं। भारतीय इतिहास में लिखित अभिलेखों की प्रधानता है। हालाँकि, मंदिर के अवशेष, सिक्के, घर के अवशेष, खंभों के गड्डे (Post-Holes), मिट्टी के बर्तन, कोष्ठागार आदि के रूप में पुरावशेष भी साक्ष्यों की एक महत्वपूर्ण श्रेणी का गठन करते हैं। भारतीय इतिहास के तीनों काल – प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक – के लिए पुरातात्विक साक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। पुरातात्विक साक्ष्य उन अवधियों के लिए अपरिहार्य हैं जिनके पास कोई लेखन नहीं था; उदाहरण के लिए, भारतीय इतिहास का प्रागैतिहासिक और आद्य-ऐतिहासिक काल।

स्रोतों को प्राथमिक और द्वितीयक के रूप में भी विभाजित किया जा सकता है। पृथ्वी से बरामद सभी पुरातात्विक अवशेष या मंदिरों से प्राप्त अभिलेख और लिखित दस्तावेज़ों के रूप में *तालपत्र* (ताड़ के पत्ते की पांडुलिपियाँ); खंभों, चट्टानों, तांबे की तश्तरियों, मृदमाण्डों आदि पर जो शिलालेख हैं वे **प्राथमिक स्रोत** कहलाते हैं। इतिहासकारों द्वारा इनका उपयोग लेखों, किताबों या लिखित इतिहास के किसी भी रूप को लिखने के लिए किया जाता है जो बाद के शोधकर्ताओं द्वारा उपयोग किए जाते हैं और इसलिए ये **द्वितीयक स्रोत** कहलाते हैं। लिखित प्राथमिक स्रोत दो प्रकार के होते हैं:

- पांडुलिपियों / शिलालेख
- प्रकाशित सामग्री

प्राचीन ग्रन्थों के लिखे जाने के पीछे क्या प्रयोजन था और वे किन श्रोतागण के लिए लिखे गये थे, इन सब का सावधानी से अध्ययन होना चाहिए। जब कोई ऐतिहासिक जानकारी के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन कर रहा हो तब कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उपिंदर सिंह ने कहा है कि यदि एक विशेष अवधि में एक ग्रन्थ की रचना की गई है, तो ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसका उपयोग कम समस्यापूर्ण है। हालाँकि, यदि इसकी रचना लंबे समय तक चलती है, तो उसका काल निर्धारण करना अधिक जटिल हो जाता है। उदाहरण के लिए, महाकाव्यों में *महाभारत* को एक विशिष्ट समय के ग्रन्थ के रूप में देखना बहुत मुश्किल है। ऐसे मामलों में इतिहासकार को विभिन्न कालानुक्रमिक परतों का विश्लेषण करना पड़ता है और गंभीर रूप से विभिन्न परिवर्धनों और प्रक्षेपों को देखना होता है। किसी ग्रन्थ की भाषा, शैली और सामग्री का विश्लेषण करना आवश्यक है। *रामायण* और *महाभारत* दोनों महाकाव्यों के महत्वपूर्ण संस्करण बनाए गए हैं जहाँ इन ग्रंथों की विभिन्न पांडुलिपियों का विश्लेषण किया गया और उनके मूल को

पहचानने का प्रयास किया गया है। इस तरह के उपक्रमों ने इतिहासकारों की काफ़ी मदद की है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते समय कुछ प्रश्नों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, उनकी रचना क्यों और किसके लिए की गई? उनका सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ क्या था? एक ग्रंथ एक आदर्श का प्रतिनिधित्व कर सकता है और उस समय जो हो रहा था उसका सटीक विवरण शायद नहीं हो सकता। एक साहित्यिक कृति कई भारतीय धार्मिक ग्रन्थों की तरह मिथकों से भरभूर हो सकती है, जो ऐतिहासिक जानकारी का स्रोत हो सकती है परन्तु उसका सावधानी के साथ अध्ययन किया जाना चाहिए।

1.5.1 साहित्यिक स्रोत

अधिकांश प्रारंभिक भारतीय साहित्य धर्म, बह्मांड विज्ञान, जादू, अनुष्ठान, प्रार्थनाओं और पौराणिक कथाओं से भरा हुआ है, इसलिए इन ग्रंथों के साथ काल-निर्धारण से जुड़ी समस्याएँ हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनकी रचना और संकलन की अवधि में एक व्यापक अंतर होता है। वे ईश्वर मीमांसा जैसे विषय से संबंध रखते हैं इसलिए उन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से समझना मुश्किल है। *वेद, उपनिषद, ब्राह्मण* साहित्य, *सूत्र, पुराण* आदि मोटे तौर पर धार्मिक विषयों से संबंधित हैं। हालाँकि इन सीमाओं के बावजूद ऐसे ग्रंथों को अतीत को समझने के लिए फलदायी रूप से इस्तेमाल किया गया है।

अब हम भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य की इन विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन करेंगे।

वेद

भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे पहला साहित्य वैदिक साहित्य है। *वेद* शब्द संस्कृत मूल के 'विद' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'जानना'। *वेद* का अर्थ है ज्ञान। *वेद* मौखिक साहित्य में उत्कृष्ट हैं। उन्हें पारंपरिक रूप से श्रुति यानि 'सुना' या प्रकट ग्रंथों के रूप में माना जाता है। वैदिक साहित्य तीन रूप से वर्गीकृत हैः

क) ***संहिता* या संग्रह**, अर्थात् भजनों, प्रार्थनाओं, विसंगतियों, द्वंद्ववाद, बलिदान के सूत्र और वाद-विवाद। निम्नलिखित चार वैदिक संहिताएँ हमें ज्ञात हैंः

ऋग्वेद संहिताः *ऋग्वेद* का संग्रह। यह प्रशंसा (***ऋक***) के गीतों का ज्ञान है।

अथर्ववेद संहिताः *अर्थववेद* का संग्रह अथवा जादुई सूत्रों का ज्ञान (*अथर्वन्*)।

सामवेद संहिताः *सामवेद* का संग्रह, अर्थात् गीतों या धुनों (*समन*) का ज्ञान।

यजुर्वेद संहिताः *यजुर्वेद* का संग्रह पूजा-अनुष्ठानों के लिए यज्ञीय सूत्रों (*यजु*) का संकलन है।

ख) ***ब्राह्मणः*** ये विस्तृत गद्य ग्रंथ हैं जिनमें धार्मिक विषय होते हैं, विशेष रूप से बलिदान पर टिप्पणियां और बलिदान संस्कार व समारोहों का व्यावहारिक या रहस्यमयी महत्व।

ग) ***आरण्यक* (वन ग्रन्थ) और उपनिषद (गुप्त सिद्धांत)** : इनमें भगवान, संसार, मानव जाति इत्यादि पर वन तपस्वियों व संन्यासियों के मतों और कथनों का विवरण है। इनमें प्राचीनतम् दर्शनशास्त्र का अच्छा खासा समावेश है।

संपूर्ण वैदिक साहित्य को ईश्वर द्वारा प्रकट किया गया माना जाता है और इसलिए इसे पवित्र माना जाता है। कालक्रम में यह हजार वर्षों तक फैला है, कुछ हिस्से पहले की अवधि

और कुछ बाद की अवधि के हैं। *ऋग्वेद* भारत का सबसे पुराना ग्रंथ है। इसमें 10 पुस्तकें अथवा मंडल हैं। *ऋग्वेद* की पुस्तकें II-VII सबसे प्राचीन हैं और इन्हें पारिवारिक पुस्तकें भी कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक को ऋषियों के एक विशेष परिवार द्वारा परंपरा के अनुसार रचित किया गया। जब हम प्रारंभिक वैदिक साहित्य का उल्लेख करते हैं तो हम अनिवार्य रूप से *ऋग्वेद* की पुस्तकों II-VII का उल्लेख करते हैं। माना जाता है कि 1500-1000 बी.सी.ई. में इसकी रचना की गई थी। उत्तर वैदिक साहित्य में *ऋग्वेद* की पुस्तकें I, VIII, IX और X शामिल हैं; इनके साथ शामिल हैं : *सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, अरण्यक* और *उपनिषद*। ये लगभग 1000-500 बी.सी.ई. के बीच रचे गए थे।

हालाँकि अधिकांश वैदिक साहित्य में गीत, प्रार्थना, धर्मशास्त्रीय और धार्मिक मामले शामिल हैं, लेकिन इनका उपयोग इतिहासकारों ने राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक सामग्री को इकट्ठा करने के लिए किया है। *ऋग्वेद* में एक पशुपालन, पूर्व-वर्ग समाज से उत्तर-वैदिक काल के कृषक, वर्गीकृत जाति-समाज की ओर संक्रमण व राजनीतिक क्षेत्रों के निर्माण जैसी प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त हुई है।

ग्रंथों की एक श्रेणी और है – *सूत्र*। यह वैदिक साहित्य के बाद का हिस्सा है। इन्हें "सुने" (श्रुति) ग्रंथों के बजाय संस्मरण अथवा "स्मृति" के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ये महान ऋषियों द्वारा रचे गए थे। हालाँकि ये अपने आप में आधिकारिक माने जाते हैं। सूत्र ग्रंथ (लगभग 600-300 बी.सी.ई.) कर्मकांड पर आधारित हैं।

इसमें शामिल है:

- **श्रौतसूत्र** : इनमें महान बलिदानों को संपन्न करने के नियम हैं।
- **गृह्यसूत्र** : इनमें दैनिक जीवन के सरल समारोहों और बलिदानों के लिए दिशा-निर्देश शामिल हैं।
- **धर्मसूत्र** : ये आध्यात्मिक और ग़ैर-धार्मिक कानून के निर्देशों की पुस्तकें हैं। ये सबसे पुरानी कानून पुस्तकें हैं।

सूत्रोत्तर ग्रंथ *स्मृति* ग्रंथ है जो *मनुस्मृति, नारद स्मृति* और *याज्ञवल्क्य स्मृति* हैं। ये लगभग 200 बी.सी.ई. और 900 सी.ई. के बीच रचे गए थे। ये विभिन्न वर्णों के साथ-साथ राजाओं और उनके अधिकारियों के कर्तव्यों के बारे में उल्लेख करते हैं। इसमें शादी और संपत्ति के लिए नियम तय किए गये हैं। इसमें चोरी, हमला, हत्या, व्यभिचार आदि के लिए व्यक्तियों को दंड का भी विधान है।

प्रारंभिक भारत में मौखिक और लिखित परंपरा

प्रारंभिक भारतीय इतिहास का एक बड़ा हिस्सा मौखिक परंपरा से संबंधित है। *वेदों* को पारंपरिक रूप से श्रुति यानि सुना या 'प्रकट' ग्रन्थों के रूप में माना जाता है। कहा जाता है कि ये शब्द भगवान ब्रह्मा द्वारा प्रथम मनुष्य के कान में कहे गए थे। उन्हें स्मरण किया जाता था और इस तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंप दिया गया। लोतिका वरदराजन के अनुसार पवित्र ग्रन्थों के संस्मरण की प्रक्रिया ने कर्मकांडों को बिगड़ने व भ्रष्ट होने से रोक दिया। यह संभव नहीं होता यदि ये लिखित शब्द के माध्यम से प्रेषित होते। ज्ञान पवित्र और संकृत था और केवल योग्य छात्र को प्रेषित किया जाना था।

भारत में शहरीकरण के उदय के साथ साक्षरता का आगमन जुड़ा हुआ है। व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि के साथ लिपि का प्रयोग आरंभ हुआ। प्रतिज्ञा पत्र, ऋण पत्र,

उत्पादित वस्तुओं और आदान-प्रदान के लेखे-जोखे और यहाँ तक की सूदखोरी का उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिलता है। शिलालेख साक्षरता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति थी। अशोक के शिलालेखों में तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. में ब्राह्मी लिपि का उपयोग किया गया था, जो ब्राह्मी के उपयोग का सबसे पहला प्रमाण है। रोमिला थापर टिप्पणी करती हैं कि भारतीय संस्कृति के बारे में जो सच है वह यह था कि मौखिक और लिखित परंपरायें सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुयी थी। मौखिक परंपरा पर लिखित परंपरा थोपी नहीं गई थी, इस प्रकार इसे एक गैर विशेषता बनने से रोका जा सका।

कौटिल्य का *अर्थशास्त्र*

यह अर्थव्यवस्था और राज्य-व्यवस्था पर एक महत्वपूर्ण कानूनी ग्रन्थ है। इसको 15 पुस्तकों में विभाजित किया गया है, जिनमें से पुस्तकें II और III को आरम्भिक माना जा सकता है और लगता है कि यह अलग-अलग हाथों की कृतियाँ हैं। सी.ई. की आरंभिक शताब्दियों में इसे अंतिम रूप दिया गया। हालाँकि, शुरुआती भाग मौर्य काल की स्थिति और समाज को दर्शाते हैं। यह प्रारंभिक भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए समृद्ध सामग्री प्रदान करता है।

महाकाव्य

दो महान महाकाव्य – *रामायण* और *महाभारत* (लगभग 500 बी.सी.ई. - 500 सी.ई.) को भी एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। वे "इतिहास" ("इस प्रकार से") या *आख्यान* के रूप में जाने जाते हैं। व्यास लिखित *महाभारत* पुराना है और संभवतः लगभग दसवीं-चौथी शताब्दी बी.सी.ई. की स्थिति को दर्शाता है। इसकी मुख्य कथा जो कौरव-पांडव संघर्ष है, उत्तर-वैदिक काल से संबंधित हो सकती है। इसका वर्णनात्मक भाग वैदिकोत्तर काल का हो सकता है और उपदेशात्मक अंश आमतौर पर मौर्य और गुप्त काल से संबंधित है (आर. एस. शर्मा, 2005)।

यह माना जाता है कि इनमें लगातार प्रक्षेप बने हैं। चूँकि दोनों महाकाव्यों में कुछ भाग बाद में जोड़े गए, इसलिए इतिहासकारों को इस सामग्री की पाठन क्रिया में सावधानी बरतनी चाहिए और उनकी विभिन्न कालानुक्रमिक परतों को ध्यान में रखना चाहिए।

वाल्मीकि की *रामायण महाभारत* की तुलना में अधिक एकीकृत प्रतीत होती है। दोनों महाकाव्यों में वर्णित कुछ स्थलों की खुदाई की गई है। अयोध्या की खुदाई से उत्तरी काली पॉलिश वाले मृदभांड की अवधि तक बस्तियों का पता चला है। हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, पानीपत, बागपत, मथुरा, तिलपत और बैराट में खुदाई की गई है और ये स्थल चित्रित धूसर मृदभांड अवधि के समय के हैं। दोनों महाकाव्यों में धार्मिक संप्रदायों के बारे में जानकारी है, जिन्हें हिंदू धर्म की मुख्यधारा, सामाजिक प्रथाओं और तात्कालिक समय के दर्शन में एकीकृत किया गया।

पुराण

पुराण व्यास द्वारा लिखित हिंदू ग्रंथों की एक श्रेणी है। 18 महापुराण और कई उपपुराण (पुराणों के पूरक या परिशिष्ट) हैं। प्रमुख *पुराणों* का संकलन 400 सी. ई. तक पूरा हो गया था। उनकी विश्वव्यापी सामग्री इंगित करती है कि ये विभिन्न विषयों को शामिल करते हैं और विभिन्न हाथों द्वारा रचित है।

निम्नलिखित पांच शाखाओं को *पुराणों* के विषय-वस्तु के रूप में माना जाता हैः

- *सर्ग* (विश्व के निर्माण),
- *प्रतिसर्ग* (ब्रह्मांड का पुनः निर्माण),
- *मन्वतर* (विभिन्न मानवों का काल/मनु का काल),
- *वंश* (देवताओं, राजाओं और संतों की वंशावली सूची), और
- *वंशानुचरित* (शाही राजवंशों का वृत्तांत/कुछ चुने हुए पात्रों की जीवन कथाएँ)।

प्रमुख पुराणों जैसे *वायु, ब्रह्मांड, ब्रह्मा, हरिवंश, मत्स्य, विष्णु* में ज़रूरी जानकारी है जिसे इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को समझने के लिए इस्तेमाल किया है। *पुराणों* में प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उपयोगी जानकारी है। वे राजवंशों के राजनीतिक इतिहास और वंशावली पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि वह कालीयुग के बाद की वंशावली है जो ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है। प्राचीन राजवंशों पर *पुराणों* में बहुत कुछ है जैसे हर्यक, शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, कण्व और आंध्र। कुछ राजाओं के नाम के अंत में 'नाग' शब्द प्रत्यय के रूप में जुड़ा हुआ है जो उत्तर व मध्य भारत पर राज कर रहे थे। दिलचस्प बात यह है कि हम किसी अन्य स्रोत से इन राजाओं के बारे में नहीं जानते हैं। *पुराणों* में गुप्त राजाओं के साथ वंश सूची समाप्त होती है। यह दर्शाता है कि *पुराणों* को लगभग चौथी-छठी शताब्दी सी.ई. के दौरान संकलित किया गया। हालाँकि, कुछ ऐसे हैं जो बाद में रचे गए, जैसे कि *भागवत पुराण* (लगभग 10वीं शताब्दी) और *स्कंद पुराण* (लगभग 14वीं शताब्दी)।

पुराण नदियों, झीलों, पहाड़ों आदि पर भौगोलिक जानकारी प्रदान करने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए, वे प्राचीन भारत के ऐतिहासिक भूगोल के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, वे हिंदू धर्म के तीन प्रमुख संप्रदायोंः वैष्णववाद, शैववाद और शक्तिवाद के बारे में जानकारी का एक अच्छे स्रोत हैं। विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे विभिन्न पंथ प्रमुख धार्मिक परंपराओं के भीतर कैसे एकीकृत हो गए और गणपति, कृष्ण, ब्रह्मा, कार्तिकेय आदि जैसे छोटे पंथ कैसे उभरे, यह भी उनसे जाना जा सकता है। इन पंथों को ब्राह्मणों ने अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों का प्रसार हेतु वाहन के रूप में प्रयोग किया।

संगम साहित्य

सबसे शुरुआती तमिल ग्रंथ *संगम* साहित्य (लगभग 400 बी.सी.ई. - 200 सी.ई. के बीच) संकलित किए गए। यह उन कवियों का संकलन है, जिन्होंने तीन से चार शताब्दियों की अवधि में छोटी और लंबी कविताओं की रचना की, जो प्रमुखों और राजाओं द्वारा संरचित हैं। इनका संग्रह गोष्ठियों में हुआ जिन्हें *संगम* कहा जाता था और इसमें उत्पादित साहित्य को *संगम* साहित्य कहा जाने लगा। तीन *संगम* (साहित्यिक सम्मेलन) हुए – पहला और अंतिम सम्मलेन मदुरै में, दूसरा सम्मलेन कपाटपुरम में हुआ था। हालाँकि, इन समारोहों की ऐतिहासिकता के बारे में कुछ संदेह है, इसलिए, कुछ विद्वान *संगम* साहित्य (उपिंदर सिंह, 2008) के बजाय "प्रारंभिक शास्त्रीय तमिल साहित्य" शब्द का उपयोग करना पसंद करते हैं।

कविताओं में लगभग 30,000 पंक्तियाँ प्रेम और युद्ध के विषयों पर हैं। वे प्राचीन काल के भाटों के गीतों पर आधारित थे और संकलित होने से पहले लंबे समय तक मौखिक रूप से प्रसारित हुए हैं। वे धार्मिक साहित्य के रूप में संकलित नहीं थे। इनके कवि शिक्षकों, व्यापारियों, बढ़ई, सुनार, लोहार, सैनिक, मंत्री और राजा आदि सभी वर्गों से थे। लेखकों के विविध विषयों के कारण वे अपने समय के लोगों के रोजमर्रा के जीवन की जानकारी की खान हैं। वे उच्चतम गुणवत्ता के साहित्य का प्रतिनिधि करते हैं (उपिंदर सिंह, 2008)।

कई कविताओं में एक राजा या नायक का नाम आता है और उसके सैन्य कारनामों का विस्तार से वर्णन मिलता है। उनके द्वारा भाटों और योद्धाओं को दिए गए उपहारों का वर्णन मिलता है। ऐसा भी हो सकता है, शाही दरबार में इन कविताओं का गान किया गया हो। इसलिए यह संभव है कि राजाओं के नाम वास्तविक ऐतिहासिक आंकड़ों का उल्लेख करते हैं। चोल राजाओं का उल्लेख दाता के रूप में किया गया है।

संगम साहित्य में कावेरीपट्टिनम जैसे कई समृद्ध शहरों का उल्लेख है। वे अपने जहाजों में आने वाले यवनों, सोने के लिए काली मिर्च खरीदने और स्थानीय लोगों को शराब और महिला दासों की आपूर्ति करने की बात करते हैं (आर.एस. शर्मा, 2005)। व्यापार पर *संगम* साहित्य द्वारा उत्पादित जानकारी की पुरातत्व और विदेशियों के वृत्तांत द्वारा पुष्टि की गयी है।

जीवन-वृत्तांत, कविता और नाटक

प्रारंभिक भारत नाटक और कविता की कई कृतियों का भंडार है। इतिहासकारों ने उस काल के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया है, जिस समय उनकी रचना की गई थी। सबसे पहले संस्कृत के कवियों और नाटककारों में अश्वघोष और भाष शामिल हैं। अश्वघोष ने *बुद्धचरित, सारिपुत्रकृष्ण* और *सौन्दरानंद* को लिखा। भास एक नाटककार थे और उन्होंने *पंचरात्र, दत्तवाक्य, बालचरित* और *स्वप्न-वासवदत्ता* लिखा। महान संस्कृत लेखक-कवि कालिदास (लगभग चौथी-पांचवीं शताब्दी सी.ई.) *ने अभिज्ञानशाकुंतलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वषीयम्* और *रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्* और *मेघदूतम्* जैसे काव्य कृतियों को लिखा। वे गुप्त वंश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। *मालविकाग्निमित्रम्* पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल की घटनाओं पर आधारित है (शुंग वंश मौर्यों के बाद था)।

तत्पश्चात, ऐतिहासिक विषयों पर प्राचीन नाटक हैं। उल्लेख विशाखदत्त के *मुद्राराक्षस* (लगभग 7वीं - 8वीं शताब्दी सी.ई.) का किया जा सकता है। यह नाटक इस बात पर आधारित है कि चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य की ओर से नंदों के मंत्री राक्षस पर कैसे विजय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। उनके अन्य नाटक *देवीचंद्रगुप्तम्* गुप्त राजा, रामगुप्त के शासनकाल की एक घटना पर केंद्रित है। कथा साहित्य में *पंचतंत्र* (लगभग 5वीं -6वीं शताब्दी सी.ई.) और *कथासरित्सागर* (कहानियों का महासागर) शामिल हैं। वे लोकप्रिय लोक कथाओं के संग्रह हैं।

प्रसिद्ध राजाओं की जीवनियाँ साहित्य का एक दिलचस्प हिस्सा हैं। इन्हें दरबारी-कवियों और लेखकों ने अपने शाही संरक्षकों की प्रशंसा में लिखा था। बाणभट्ट का *हर्षचरित* (लगभग 7वीं शताब्दी सी.ई.) पुष्यभूति राजवंश के हर्षवर्धन के बारे में प्रशस्तिपरक शब्दों में बात करता है। यह भारत में सबसे पुरानी संरक्षित जीवनी है। बाण के अनुसार यह एक अध्यायिका है। यह इतिहास परंपरा से संबंधित ग्रंथों की एक शैली है। यह राजा के बारे में बहुत कुछ बताता है लेकिन साथ ही सिंहासन के लिए संघर्षरत होने का संकेत देता है। बिल्हण का *विक्रमांकदेवचरित्* (लगभग 12वीं सदी) बाद के चालुक्य राजा विक्रमादित्य VI के बारे में है और उनकी जीत का वर्णन करता है।

बौद्ध और जैन साहित्य

प्रारंभिक भारत के गैर-ब्राह्मणवादी और गैर-संस्कृत स्रोतों में बौद्ध और जैन साहित्य एक महत्वपूर्ण श्रेणी है। यह क्रमशः पालि और प्राकृत भाषाओं में लिखा गया था। बुद्ध की मृत्यु के बाद रचित पाली ग्रंथ *त्रिपिटक* ("तीन टोकरी") हमें बुद्ध और 16 *महाजनपदों* के समय

के भारत के बारे में बताते हैं। *त्रिपिटक* पालि में बौद्ध विहित साहित्य और उनकी टिप्पणियों के लिए दिया जाने वाला सामान्य नाम है। *त्रिपिटक* पालि, जापानी, चीनी और तिब्बती संस्करणों में जीवित हैं। उनमें तीन किताबें शामिल हैं :

- *सुत्त पिटक,*
- *विनय पिटक,* और
- *अभिधम्म पिटक*।

सुत्त पिटक में कहानियों, कविताओं और संवाद के रूप में विभिन्न सिद्धांतों पर बुद्ध के प्रवचन शामिल हैं। *विनय पिटक* भिक्षुओं के लिए 227 नियमों और विनियमों के बारे में है। इसमें बुद्ध द्वारा प्रत्येक नियम की स्थापना के बारे में स्पष्टीकरण शामिल हैं। इसमें उनके जीवन, घटनाओं और बौद्ध धर्म की कहानी के बारे में जानकारी शामिल है। यह 386 बी.सी.ई. में लिखा गया था।

अभिधम्म पिटक (शाब्दिक रूप से "उच्च धम्म") में थेरवाद के अनुसार बौद्ध दर्शन से संबंधित विषय हैं और इसमें सूचियाँ, सारांश और प्रश्न शामिल हैं। *सुत्त पिटक* में पाँच *निकाय* शामिल हैं जिनमें से *खुद्दक निकाय* प्रवचनों का एक संग्रह है। इसमें *थेरगाथा, थेरीगाथा* और *जातक* शामिल हैं जो एक इतिहासकार के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं। *जातक* में लगभग 550 से अधिक कहानियाँ देव, मनुष्य, पशु, परी, आत्मा या एक पौराणिक चरित्र के रूप में बुद्ध के पूर्व जन्मों के बारे में हैं। कई कहानियों और रूपांकनों को पूर्व-बौद्ध और गैर-बौद्ध मौखिक परंपराओं से लिया गया था। उनकी लोकप्रियता के कारण वे भारहुत, सांची, नागार्जुनाकोंडा और अमरावती में मूर्तिकला में चिन्हित है। वे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बौद्ध धर्म और लोकप्रिय बौद्ध धर्म के इतिहास की एक झलक प्रदान करते हैं।

थेरगाथा ("ज्येष्ठ बौद्ध भिक्षुओं की कविताएँ") और *थेरीगाथा* ("ज्येष्ठ बौद्ध भिक्षुणियों की कविताएँ") कविता का एक संग्रह है, जिसे छंद के रूप में बौद्ध भिक्षुओं के शुरुआती सदस्यों ने सुनाए थे। *थेरीगाथा* भारत की पहली संरक्षित कविता संग्रह है जिसे महिलाओं द्वारा रचा गया है। इसलिए, यह न केवल बौद्ध धर्म के लिए बल्कि लिंग अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण है। *थेरीगाथा* की गाथाएँ इस दृष्टिकोण का पुरज़ोर समर्थन करती हैं कि महिलाएँ आध्यात्मिक प्राप्ति के मामले में पुरुषों के बराबर हैं।

गैर-विहित बौद्ध साहित्य में प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.– प्रथम शताब्दी सी. ई. के आसपास *मिलिंदपन्हो* ("मिलिंद के प्रश्न") शामिल हैं। इसमें इंडो-ग्रीक राजा मिनेंडर और एक बौद्ध भिक्षु नागसेन के बीच संवाद शामिल है। सिंहली इतिहास *महावंश* ("महान इतिहास") और *दीपवंश* ("द्वीप का इतिहास") बुद्ध के ज्ञानोदय के समय से तीसरी शताब्दी बी. सी. ई. तक भारत में और चौथी शताब्दी सी. ई. तक श्रीलंका में विभिन्न पहलुओं पर जानकारी देते हैं।

जैन साहित्य में ग्रंथों की एक अन्य महत्वपूर्ण श्रेणी का गठन किया गया है जो प्राकृत का एक रूप, अर्धमगधी में है। इसमें ऐसी जानकारी है जो प्राचीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों के इतिहास के पुनर्निर्माण में हमारी मदद करती है। दिगंबरों का साहित्य जैन शौरसेनी में है जबकि श्वेतांबर साहित्य अर्धमगधी की दो उपभाषाओं में है। महावीर द्वारा शिष्यों को दिए गए उपदेश पहली बार 14 *पूर्वों* में संकलित किए गए। स्थूलभद्र ने चौथी शताब्दी बी. सी. ई. में पाटलिपुत्र में एक महान परिषद का गठन किया और 12 *अंगों* में जैन साहित्य का पुनर्निर्माण किया। बाद में लगभग 5वीं शताब्दी सी.ई. में वल्लभी में हुए एक परिषद में मौजूदा ग्रंथों को औपचारिक रूप दिया गया और उन्हें लिखित रूप में प्रस्तुत किया गया।

श्वेतांबर द्वारा स्वीकार किए गए शास्त्र हैं:

i) 12 *अंग,*

ii) 12 *उपांग,*

iii) 10 *प्रकर्ण,*

iv) 6 *चेदसूत्र,*

v) 2 *सूत्र,* और

vi) 4 *मूलसूत्र*।

ये आचार संहिता, विभिन्न किंवदंतियों, जैन सिद्धांतों और तत्वमीमांसा के बारे में बताते हैं। दिगंबरों का मानना है कि अधिकांश मूल *पूर्व* खो गए हैं। इसलिए, वे श्वेतांबर द्वारा स्वीकार किए गए शास्त्रों को स्वीकार नहीं करते हैं। वे महान आचार्यों द्वारा लिखित धर्मग्रंथों का उपयोग करते हैं, जो महावीर की मूल शिक्षाओं पर आधारित हैं। जैन धर्म के इतिहास और सिद्धांत की जानकारी के लिए हम जैन साहित्य का उपयोग कर सकते हैं। प्रतिद्वंद्वी पंथ के सिद्धांत, जैन संघ में रहने वाले संतों की जीवन गाथा और जैन भिक्षुओं के जीवन के बारे में जान सकते हैं।

ऊपर दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि ज्यादातर प्राचीन भारतीय साहित्य धार्मिक है। इसलिए कुछ विद्धानों ने दावा किया है कि प्राचीन भारतीयों के पास इतिहास की भावना ही नहीं थी। शुरुआती पश्चिमी विद्वानों को कालक्रम, साक्ष्य, एक साफ-सुधरी कथा और और भारतीय ग्रन्थों में तारीखों की तलाश थी। इसके बजाय उन्हें जो मिला वह दंतकथाएँ, अनुष्ठान, प्रार्थना आदि थे। हालांकि, भारत की ऐतिहासिक परंपराओं के हालिया शोध ने यह स्पष्ट किया है कि विभिन्न समाज अलग-अलग तरीकों से ऐतिहासिक चेतना को एकीकृत करते हैं। इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं। इतिहासकार रोमिला थापर एक ऐसी ही परंपरा का जिक्र करती है जिसे *इतिहास-पुराण* परंपरा कहा जाता है। वह नोट करती है कि कुछ समाज विशेष रूप से अपने अतीत को अभिलिखित करते हैं। ऐसा ही एक रूप चेतना का एक अंतर्निहित रूप है जिसे ग्रन्थों से बाहर निकालना पड़ता है। इनमें मूल मिथक, प्राचीन वंश समूहों के नायकों या वंशावली की प्रशंसा में रचनाएं शामिल है। कुछ अन्य ग्रन्थों में इतिहास का अधिक बाह्य रूप है, जैसे शासकों की जीवनी जिसे एक पहचानने योग्य रूप में लिखा गया है।

1.5.2 पुरातत्व

पुरातत्व के द्वारा अतीत को समझने के लिए भौतिक सामग्री का अध्ययन किया जाता है। इसका इतिहास से घनिष्ठ संबंध है। मूर्तियाँ, मिट्टी के बर्तनों, हड्डियों के टुकड़े, घर के अवशेष, मंदिर के अवशेष, अनाज, सिक्के, मुहरें, शिलालेख आदि वे अवशेष हैं जो पुरातत्व विज्ञान की विषय-वस्तु के रूप में हमारे सामने हैं।

यह पुरातात्विक साक्ष्य है जिससे हम प्रागैतिहासिक काल का अध्ययन करने में सक्षम हैं। भारत में भी पुरातत्व के आधार पर आद्य-ऐतिहासिक काल का पुनर्निर्माण किया गया है। हालाँकि, हम पुरातत्व की उपयोगिता को केवल इन अवधियों तक सीमित नहीं कर सकते हैं; यह उन अवधियों के लिए भी महत्वपूर्ण है जिनके लिखित प्रमाण हैं और जो इतिहास के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए, इंडो-ग्रीक के इतिहास को सिक्कों के आधार पर ही समझा गया है।

मौर्य आहत सिक्कों का भंडार। सीएनजी सिक्के.। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Hoard_of_mostly_Mauryan_coins.jpg).

उत्खनन और अन्वेषण जैसे पुरातात्विक तरीके महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये व्यापार, राज्य, अर्थव्यवस्था, सामाजिक पहलुओं, धर्म और इस तरह के सांसारिक पहलुओं पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं जैसे कि लोग कैसे रहते, खाते और कपड़े पहनते थे। उत्खनन से पुरापाषाण, मध्यपाषाण, नवपाषाण, ताम्र पाषाण, लौह युग, महापाषाण और कई अन्य संस्कृतियों पर भारी मात्रा में दत्त सामग्री प्राप्त होती है। चूँकि हड़प्पा लिपि अभी भी

पाटलिपुत्र में कुम्रहार से उत्खन्न द्वारा अनावृत स्तम्भित कक्ष के खंडहर। स्रोत : पाटलिपुत्र में 1912-13 का ए एस आई ई सी द्वारा पुरातात्विक उत्खन्न स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। (https://en.wikipedia.org/wiki/Kumhrar#/media/File:Mauryan_ruins_of_pillared_ hall_at_Kumrahar_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg).

अनिर्धारित है, इसलिए इस अवधि की जानकारी पूरी तरह से पुरातत्व से प्राप्त की गई है। यह हमें उत्पत्ति, प्रसार, अधिवास के प्रतिरूप, शहरीकरण, व्यापार, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कृषि, शिकार, फसलों, कृषि उपकरणों, प्रौद्योगिकी, मनकों, मुहरों, अग्नि वेदियों, धर्म और इस सभ्यता के ह्रास के बारे में बताता है।

सिक्के

सिक्के उत्खनन में या मुद्रा भंडार के रूप में पाए जाते हैं। सिक्कों के अध्ययन को **मुद्राशास्त्र** कहा जाता है। सिक्का एक धातु मुद्रा है और इसका एक निश्चित आकार, और वजन मानक है। इस पर जारी करने वाले प्राधिकरण की मुहर भी मिल सकती है। उस सतह पर जहाँ संदेश लिखा जाता है उसे अग्र भाग और विपरीत पक्ष को उल्टा भाग (reverse) कहा जाता है। प्रारंभिक भारतीय इतिहास में 'दूसरा शहरीकरण' (लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई.) पहला उदाहरण है, जहाँ हमें सिक्के के साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों प्रमाण मिलते हैं। यह राज्यों के उदय, कस्बों और शहरों के विकास और कृषि और व्यापार के प्रसार का समय था। प्रारंभिक भारत में सिक्के तांबे, चांदी, सोने और सीसे से बनते थे। पकी मिट्टी के बने सिक्कों के सांचे, जो कुषाण काल (पहली तीन शताब्दियों सी.ई.) से संबंधित हैं, सैकड़ों में पाए गए हैं। वे इस समय के समृद्ध वाणिज्य को दर्शाते हैं। प्रमुख राजवंशों से संबंधित अधिकांश सिक्कों को सूचीबद्ध और प्रकाशित किया गया है। उपमहाद्वीप में सबसे पुराने सिक्के आहत सिक्के हैं। ये ज्यादातर चांदी के और कभी-कभी तांबे के होते हैं। मगध साम्राज्य के विस्तार के साथ मगध के आहत सिक्कों को प्रतिस्थापित किया गया जो अन्य राज्यों द्वारा जारी किए गए थे।

हालाँकि सबसे पुराने सिक्कों में केवल चिन्ह थे जो बाद में राजाओं, देवताओं के साथ उनकी तिथियों और नामों का भी उल्लेख करते थे। उदाहरण के लिए, पश्चिमी क्षत्रप के सिक्कों पर शक काल की तिथियाँ मिलती हैं। सिक्कों के प्रचलन ने हमें कई सत्तारूढ़ राजवंशों के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में सक्षम बनाया है। सिक्के राजनीतिक संगठन पर बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं। मिसाल के तौर पर, यौधेय और मालव के सिक्के 'गण' की विरासत को आगे ले जाते हैं, जो हमें उनके गैर-राजतंत्रीय स्वरूप के बारे में बताता है। दक्कन के सातवाहन सिक्कों पर एक जहाज की छवि समुद्री व्यापार के महत्व की गवाही देती है।

मौर्योत्तर काल में सिक्के सीसा, पोटिन, तांबा, कांस्य, चांदी और सोने के बने थे। इन्हें बड़ी तादाद में जारी किया गया जिससे हमें उस काल के दौरान व्यापार की बढ़ती मात्रा की जानकारी मिलती है। गुप्त राजाओं ने भी कई सोने के सिक्के जारी किये। इन्हें दिनार के रूप में जाना जाता है। ये बहुत कुशलता से बनाये गये है और ठप्पे द्वारा निर्मित है। राजगद्दी पर बैठे राजाओं की विभिन्न मुद्राओं को दर्शाया गया हैः राजाओं को शेर या गैंडे का शिकार करते, धनुष या युद्ध-कुल्हाड़ी पकड़ते, संगीत वाद्य बजाते या अश्वमेध यज्ञ करते जैसी गतिविधियों के साथ दर्शाया गया है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त के सिक्के पर उन्हें वीणा बजाते हुए दिखाया गया है।

गुप्तोत्तर काल में सोने के सिक्कों की संख्याओं और शुद्धता में गिरावट आ गई थी। यह तथ्य आर.एस.शर्मा की सामंतवाद पर आधारित अत्यधिक विवादास्पद धारणा का आधार बनी है। उनके अनुसार सिक्कों में खोट और कौड़ियों का बढ़ता उपयोग इस काल के व्यापार और वाणिज्य की गिरावट की ओर संकेत करता है।

रानी कुमारदेवी और राजा चंद्रगुप्त प्रथम की एक गुप्त कालीन स्वर्ण मुद्रा। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स ।(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Queen_Kumaradevi_and_King_Chandragupta_I_on_a_coin.jpg).

शिलालेख

शिलालेखों के अध्ययन को **पुरालेखशास्त्र** कहा जाता है। शिलालेख मुहरों, तांबे की प्लेटों, मंदिर की दीवारों, लकड़ी के टुकड़ों, पत्थर के खंभों, चट्टान की सतहों, ईंटों या चित्रों पर उकेरे गए हैं। प्राचीनतम शिलालेखों पर अंकित लिपि लगभग 2500 बी.सी.ई. की हड़प्पा लिपि है, जो अभी तक पढ़ी नहीं गई है। सर्वप्रथम अशोक के शिलालेख पढ़े गए। ये शिलालेख पूरे उपमहाद्वीप में चट्टान की सतह और पत्थर के स्तंभों पर पाए गए हैं। अशोक के शिलालेखों को पढ़ने का श्रेय 1837 में जेम्स प्रिंसेप को जाता है। वे बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी में एक सिविल सेवक थे। अशोक के अधिकतर अभिलेख ब्राह्मी व खरोष्ठी लिपि में हैं।

अशोक के शिलालेखों की लिपि काफ़ी विकसित है। यह माना जाता है कि लेखन-कार्य उससे पहले के काल में भी किया जाता होगा। श्रीलंका में अनुराधापुरा की खुदाई में छोटे लेखों वाले बर्तन के ठीकरे मिले हैं, जिसे चौथी शताब्दी बी.सी.ई. यानी मौर्य काल के पूर्व, का माना जा सकता है। संस्कृत का पहला शिलालेख लगभग पहली शताब्दी बी.सी.ई. का मिलता है। प्राकृत और संस्कृत के मिश्रण वाला प्रारंभिक अभिलेख लगभग 5वीं शताब्दी सी. ई. में मिलता है, जिसका स्थान बाद में शाही अभिलेखों की भाषा के रूप में संस्कृत ने ले लिया। अभिलेख विभिन्न प्रकार के थे। अशोक के शिलालेख राजकीय आदेश थे जो सामान्य रूप से अधिकारियों या लोगों को संबोधित थे व सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक मामलों से संबंधित थे। अशोक का लुम्बिनी स्तंभलेख एक स्मारक शिलालेख है क्योंकि अशोक द्वारा की गई बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा को दर्ज करता है। फिर, सती (*sati* stones) तथा नायक (hero stones) के स्मारक मिले, जिनमें से कुछ पर अभिलेख मिलते हैं। मंदिर के निर्माण को रिकॉर्ड करने वाले दान अभिलेख सैकड़ों की संख्या में प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में दक्कन और दक्षिण भारत में पाए गए हैं। इनके अलावा, हमारे पास ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण राजकीय भूमि-अनुदानों के कई हजार अभिलेख मिलते हैं। ये दान के दस्तावेज़ हैं जो ब्राह्मणों और अन्य लाभार्थियों को दिए गए भूमि और अन्य वस्तुओं के अनुदान रिकॉर्ड करते हैं।

शिलालेख जो उनके संरक्षकों की प्रशंसा में लिखे गए हैं, एक प्रशस्ति के साथ शुरू होते हैं। उदाहरण हेतु प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. से प्रथम शताब्दी सी.ई. के कलिंग (ओडिशा) के राजा खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख और गुप्त राजा समुद्रगुप्त के (प्रयागराज) इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख हैं। कुछ शिलालेख बांध, जलाशय, टैंक, तथा धर्मार्थ भोजन घर आदि के निर्माण को रिकॉर्ड करते हैं। शक शासक रुद्रदमन के जूनागढ़ (गिरनार) शिलालेख में चंद्रगुप्त मौर्य के समय सुदर्शन झील नामक एक जलाशय के निर्माण का रिकॉर्ड है। अशोक के शासनकाल में इसे पूर्ण किया गया और लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में इसकी मरम्मत की गई। इस तरह विभिन्न प्रकार के शिलालेखों के अलावा, हम विविध प्रकारों जैसे भित्तिचित्र, धार्मिक सूत्र और मुहरों पर लेखन-कार्य पाते हैं।

अभिलेख राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास का एक अच्छा स्रोत हैं। वे इतिहासकारों के लिए मूल्यवान हैं क्योंकि वे हमें समकालीन घटनाओं और आम लोगों के बारे में बताते हैं। उनका प्रसार राजा के विस्तार क्षेत्र के बारे में बताता है। कई शिलालेखों में वंशावली विवरण और कभी-कभी, उन राजाओं के नाम भी शामिल होते हैं, जो मुख्य वंशावली में छूट गए हैं। पल्लव, चालुक्य और चोल काल के भूमि अनुदान हमें समकालीन राजस्व प्रणालियों, कृषि विवरण और राजनीतिक संरचनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं।

शिलालेखों के कई अन्य उपयोग भी हैं। उदाहरण के लिए, वे हमें मूर्तियों की तिथियों के बारे में बताते हैं। वे हमें विलुप्त होने वाले धार्मिक संप्रदायों के बारे में बताते हैं, वे हमें आजीवक पंथ, ऐतिहासिक भूगोल, मूर्तिकला का इतिहास, कला और वास्तुकला, साहित्य और भाषाओं का इतिहास और यहां तक कि संगीत जैसी कला के बारे में भी जानकारी देते हैं। वे साहित्यिक ग्रंथों की तुलना में अधिक विश्वसनीय हैं क्योंकि वे हमेशा धार्मिक नहीं होते हैं।

1.5.3 विदेशी वृत्तांत

कई आगंतुक, तीर्थयात्रियों, व्यापारियों, उपनिवेशिकों, सैनिकों तथा राजदूतों के रूप में भारत आए। उन्होंने जिन जगहों और वस्तुओं को देखा, उन पर अपना विवरण दिया। यदि इनका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो ये लेख बहुत सारी ऐतिहासिक जानकारी देते हैं।

यूनानी लेखक सैंड्रोकोट्टस का उल्लेख करते हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि वे एक युवा के रूप में सिकंदर से मिले थे। 18वीं शताब्दी में विलियम जोन्स ने सैंड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त मौर्य के रूप में पहचाना जो मौर्य कालक्रम का आधार बना। सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज़ ने *इंडिका* में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में अपने ठहरने का विवरण दिया है। हालाँकि यह पाठ अब मौजूद नहीं है लेकिन बाद के लेखक इसके कुछ भागों का उल्लेख करते हैं जिससे मौर्य काल की प्रशासनिक संरचना, सामाजिक वर्गों और आर्थिक गतिविधियों का पुनर्निर्माण संभव हो पाया। ग्रीक और रोमन यात्रियों के विवरण प्रारंभिक भारत में हिन्द महासागर के व्यापार के बारे में उपयुक्त जानकारी देते हैं। *पेरिप्लस ऑफ द एरीथ्रिन सी* और टॉलेमी का *जियोग्राफी,* ग्रीक में लिखे गए दोनों ग्रंथ भारत के भूगोल और प्राचीन व्यापार के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। स्ट्रैबो, एरियन, प्लिनी द एल्डर के शुरुआती यूनानी और लैटिन विवरणों में हमें भारतीय समुद्री व्यापार के बारे में पता चलता है।

चीनी यात्रियों ने समय-समय पर भारत का दौरा किया। ये बौद्ध तीर्थयात्री के रूप में यहाँ आए थे और इसलिए उनके विवरणों में बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव दिखाई देता है। उन्होंने कई पवित्र स्थानों और बौद्ध मन्दिरों का दौरा किया। फा-ह्यान ने 399-414 सी.ई के बीच

भारत की यात्रा की लेकिन उसकी यात्रा उत्तर भारत तक ही सीमित थी। ह्वेन-त्सांग ने 639 सी.ई. में ही अपना घर छोड़ दिया और भारत में 10 साल तक रहा। फा-ह्यान ने गुप्त और ह्वेन-त्सांग ने हर्षवर्धन के समय के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किया।

चीनी भिक्षु ह्वेन-त्सांग की अपनी भारत यात्रा का एक चित्रण टोक्यो राष्ट्रीय संग्रहालय। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स। (https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/9/9a/Xuanzang_w.jpg).

बाद के समय में कुछ अरब यात्रियों ने भी भारत के बारे में अपने विवरण दिए। इन अरब विद्वानों में सबसे प्रसिद्ध अबू रिहान थे जिन्हें हम अल-बरूनी के रूप में जानते हैं। वे खिव (आधुनिक तुर्कमेनिस्तान) के क्षेत्र के थे। भारत के लोगों के बारे में जानने के लिए उन्होंने भारतीय ग्रंथों को उनकी मूल भाषा में अध्ययन किया। उनकी रचना *तहकीक-ए-हिन्द* वास्तव में एक विश्वकोष है। इसमें भारतीय लिपियों, विज्ञान, भूगोल, ज्योतिश, खगोल विज्ञान, दर्शन साहित्य, विश्वास, रीति-रिवाजों, धर्मों, त्योहारों, अनुष्ठानों, सामाजिक मानदंडों और कानूनों जैसे विषयों को शामिल किया गया है। अल-बरूनी की रचना 11वीं शताब्दी के भारत के लिए एक मूल्यवान ऐतिहासिक स्रोत हैं। उन्होंने पहली बार गुप्त संवत के शुरुआती वर्ष की पहचान कराई। अरब और भारत के लोग समुद्री व्यापार करते थे। अरब यात्रियों जैसे सुलेमान के विवरण में भारत का उल्लेख मिलता है।

बोध प्रश्न 2

1) **वेद** क्या है? चारों वेदों पर संक्षेप में चर्चा करें।

.....

.....

.....

2) पुरातत्व क्या है? प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए मुख्य पुरातात्विक स्रोतों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

1.6 सारांश

उत्तर में हिमालय और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में महासागर उपमहाद्वीप के पृथक होने का एक सतही दृश्य बनाते हैं। इन सीमाओं पर सांस्कृतिक प्रभावों का आदान-प्रदान हुआ है और पश्चिम, पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ समुद्री संपर्क बनाए गए हैं। आंतरिक रूप से, यहां तक कि मध्य भारत के बीहड़, कठिन इलाकों ने वास्तव में देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विचारों और प्रभावों की आवाजाही को बधित नहीं किया है। बेशक, भूगोल और पर्यावरण ऐतिहासिक विकास को काफ़ी प्रभावित करते है, फिर भी वे इसे पूरी तरह से निर्धारित नहीं करते। अगर कोई यह समझना चाहता है कि मनुष्यों और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान कैसे होता है, तब पारिस्थितिकी एक उपयोगी अवधारणा है।

अभिलेख हमें ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। ये घटनाएं एक विशिष्ट समय और स्थान पर घटित हुई। हालाँकि, शिलालेख और साहित्यिक ग्रन्थ ज्यादातर कुलीनों – राजाओं, ब्राह्मणों, दरबारी कवियों आदि की आवाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ पुरातात्विक स्रोत बचाव में आते हैं। वे आम लोगों की भावनाओं को प्रकट करने में सक्षम है। उत्खन्न, विशेष रूप से, एक उपयोगी स्रोत है। फिर भी, हमें साहित्यिक साक्ष्य के साथ पुरातात्विक साक्ष्य का अध्ययन करने की आवश्यकता है। कई बार अगर हम सबूतों की इन दो श्रेणियों को साथ लेकर चले तो हम पाते है कि प्रत्येक दूसरे को सही और पुष्ट करता है और एक अधिक संपूर्ण तस्वीर बन पाती हैं।

1.7 शब्दावली

पुरातत्व (Archaeology) : अतीत को समझने के लिए विभिन्न वस्तुओं के अवशेषों का अध्ययन।

ताम्रपाषाण (Chalcolithic) संस्कृति : वह संस्कृतिक जिसमें पत्थर और तांबे के उपकरण का उपयोग किया जाता है। यह नवपाषाण के बाद का काल है।

पर्यावरण : वह परिवेश या स्थिति जिसमें कोई व्यक्ति, जानवर या पौधा रहता है या संचालित होता है।

स्तवन (Eulogy) : भाषण या लेखन का एक अंश जो किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की अत्यधिक प्रशंसा करता है, अर्थात् एक प्रकार की श्रद्धांजलि।

भौगोलिक नियतत्ववाद (Geographical Determinism) : भौतिक वातावरण समाज और राज्यों को विशेष रूप से विकास के अनुमानों की और कैसे प्रेरित करता है।

हड़प्पा सभ्यता : वह सभ्यता जो सिंधु-गंगा के मैदानों में लगभग 2600-1800 बी. सी. ई. के दौरान फली-फूली। इसके मुख्य

शहर थे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, कालीबंगन इत्यादि।

मानव परिस्थितिकी (Human Ecology) : मानव और उनके प्राकृतिक, सामाजिक और निर्मित वातावरण के बीच संबंध।

केन्द्रीय क्षेत्र : वे क्षेत्र जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास द्वारा सत्ता के स्थायी केन्द्रों में बदल जाते हैं।

पुरावनस्पति विज्ञान (Palaeobotany) : जीवाष्म पौधों का अध्ययन। यह जीवाष्मिकी की शाखा है जो भूवैज्ञानिक संदर्भों में पौधों की पहचान से संबंधित है और जिन्हें अतीत के जैविक पुनर्निर्माण के लिए उपयोग किया जाता है।

लवणता (Salinity) : मिट्टी में नमक सामग्री के बढ़ने की प्रक्रिया।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भारत के मुख्य भूआकृतिक विभाजन हैं – हिमालय के पर्वतीय प्रदेश, सिंधु गंगा के मैदान और प्रायद्वीप भारत (विवरण के लिए देखें भाग 1.2)

2) यहां आप क्षेत्रों की प्रकृति पर चर्चा करेंगे। क्षेत्रों को स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र, अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा अलग-थलग क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है। आपको प्रत्येक की विशेषताओं पर चर्चा करनी होगी। भाग 1.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) **वेद** शब्द **'विद'** से लिया गया है जिसका अर्थ है 'जानना'। **वेद** का अर्थ है 'ज्ञान'। चार **वेद** हैं : **ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद** तथा **यर्जुवेद**। (विवरण के लिए उपभाग 1.5.1 देखें)।

2) पुरातत्व विज्ञान वह शाखा है जो अतीत को समझने के लिए भौतिक सामग्री का अध्ययन करती है। प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उत्खन्न, अन्वेषण, सिक्के और अभिलेख मुख्य पुरातात्विक स्रोत है (विवरण के लिए देखें उपभाग 1.5.2)।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

चक्रबर्ती, डी. के. (2014). एडीटोरियल. एस्पेक्ट्स ऑफ हिस्टोरिकल ज्योगरफी. इन चक्रबर्ती, डी. के. एंड लाल, माक्खन (ऐड्स). *हिस्टी ऑफ ऐशियन्ट इंडिया, वॉल्यूम 1, प्रीहिस्टोरिकल रूट्स.* दिल्ली : विवेकानन्द इंटरनेशनल फाऊंडेशन एंड आर्यन बुक्स इंटरनेश्नल.

शर्मा, आर. एस. (2005). *इंडियाज ऐशियन्ट पास्ट.* ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सिंह, उपिंदर (2008). *ए हिस्ट्री ऑफ ऐशियन्ट ऐंड अर्ली मेडिवल इंडिया : फ्रॉम स्टोन ऐज़ टू द 12वी सेन्चूरी.* डोरलिंग किन्डर्सले (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड.

सुब्बाराव, बी. (1958). *द पर्सनेलिटी ऑफ इंडिया.* बरोडा

थापर, रोमिला (2002). *द पेन्गुईन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया. फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए. डी. 1300.* पेन्गुईन बुक्स.

इकाई 2 प्रागैतिहासिक काल*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पारिभाषिकी

2.3 प्राक्-इतिहास का जन्म

2.4 भारत की भौगोलिक विशेषताएँ

2.5 भारतीय पुरापाषाण काल के चरण एवं काल निर्धारण

2.6 पुरापाषाण काल के पुरातात्विक साक्ष्य

2.7 भारत में निम्न पुरापाषाण काल

2.8 मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ

2.9 उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ

2.10 मध्य पाषाण कालीन संस्कृति

2.11 सारांश

2.12 शब्दावली

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.14 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप निम्नांकित विषयों के बारे में सीखेंगे :

- भारत में प्राक्-इतिहास का जन्म;
- पुरापाषाण और मध्यपाषाण कालीन संस्कृतियों को कैसे परिभाषित किया जाता है;
- उपकरणों के वर्गीकरण एवं प्रोद्यौगिकी के पुनर्निर्माण हेतु उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्य;
- स्थल और उनकी स्थानीय/क्षेत्रीय संरचना;
- प्रागैतिहासिक आदिमानवों/खानाबदोशों के अध्ययन के विभिन्न तरीके; और
- भारतीय पुरापाषाण एवं मध्यपाषाण काल की प्रमुख विशेषताएँ।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम मनुष्य के जैविक और सांस्कृतिक विकास के इतिहास के प्रारंभिक चरण के बारे में जानेंगे। यह वह समय है जब वर्तमान मनुष्य के पैतृक कहे जाने वाले प्राणी अपने वानर समान संबंधियों से अलग होना शुरू हो गए थे। यह 25 लाख वर्षों की यात्रा को दर्शाता है। इसी क्रम में जैविक संरचना, जैसे कि दो पैरों पर चलने एवं मस्तिष्क की वृद्धि जैसे पहुलओं में सुधार हुए। सांस्कृतिक जीवन में पत्थर एवं लकड़ी जैसे प्राकृतिक पदार्थों से उपकरणों का जीवनोपयोगी निर्माण एक महत्वपूर्ण कारक था।

* यह इकाई एम.ए.एन.-002, खंड-5 और 6 से ली गई है।

इस इकाई में हम पुरापाषाण और मध्यपाषाण संस्कृतियों, उपकरणों के वर्गीकरण तथा तकनीकी पहलुओं के पुनर्निर्माण हेतु उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों, इन संस्कृतियों के विभिन्न स्थलों, उनकी क्षेत्रीय प्रतिस्थिति (setting) एवं मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

2.2 पारिभाषिकी

पुरातत्व की वह शाखा जो मानव इतिहास के प्रारंभिक चरण के अध्ययन से संबंधित है प्राक्-इतिहास (Prehistory) कहलाती है। दूसरे शब्दों में, प्राक्-इतिहास लेखन प्रणालियों के आविष्कार से पहले के मानव समाजों की उत्पति और वृद्धि से संबंधित है। इसके बाद आद्य-इतिहास (Protohistory) आता है जो प्राक्-इतिहास एवं इतिहास के बीच का संक्रमण काल है। आद्य-इतिहास का समय सामान्य युग से पूर्व तीसरी और दूसरी सहस्त्राब्दि तथा पहली सहस्त्राब्दि का शुरुआती अर्धकाल माना गया है। यह अनेक प्रारंभिक नवपाषाण-ताम्रयुगीन समुदायों के विकास को दर्शाता है जिसकी विशेषता व्यवस्थित ग्राम्य जीवन; मवेशी और भेड़-बकरी जैसे जानवरों का पालन; गेहूँ, जौ, चावल और बाजरा जैसी फसलों की खेती के साथ-साथ विभिन्न कलाओं एवं शिल्पों का उद्भव है। सिंधु घाटी में इसी चरण के दौरान शहरी योजना और कांस्य तकनीक के आधार पर एक नगरीय सभ्यता का विकास हुआ। कृषि जीवन से पहले शिकार और संग्रहण की सहायता से जीवन यापन की एक लम्बी अवधि है। यही प्राक्-इतिहास की विषय-वस्तु है।

मानव अतीत या इतिहास तीन प्रमुख कालों में विभाजित है, जिनके नाम हैं :

1) पाषाण युग,
2) कांस्य युग, और
3) लौह युग।

ये केवल तकनीकी क्रम नहीं हैं। इनका अर्थ केवल यह नहीं है कि पाषाण युग में पत्थरों, कांस्य युग में कांसे एवं लौह युग में लोहे के उपकरणों एवं औज़ारों का निर्माण किया गया था। इन युगों का महत्व तकनीकी विकास से कहीं अधिक है। ये आवश्यकता-आधारित अर्थव्यवस्था (subsistence economy) या भोजन प्राप्त करने के तरीकों एवं सामाजिक संगठन के विभिन्न स्वरूपों, जैसे निर्बल, बीमार एवं वृद्धों की देखभाल एवं मृतकों के निपटान की विधि, कला एवं जीवन के अन्य पहलुओं इत्यादि को दर्शाते हैं।

पाषाण युग का विभाजन तीन कालों में किया गया है, जिनके नाम हैं :

1) पुरापाषाण काल,
2) मध्यपाषाण काल, और
3) नवपाषाण काल।

'Lithic' शब्द ग्रीक के '*Lithos*' से लिया गया है जिसका अर्थ पत्थर होता है। Palaeolithic का अर्थ पुरापाषाण, Mesolithic का अर्थ मध्यपाषाण और Neolithic का अर्थ नवपाषाण होता है।

2.3 प्राक्-इतिहास का जन्म

'प्राक्-इतिहास' का जन्म 1859 में हुआ जब उत्तरी यूरोप में लंदन की रॉयल सोसायटी के सामने विलुप्त प्रजाति वाले जंगली मवेशियों और अन्य बड़े स्तनधारियों की हड्डियों से बने प्राचीन पत्थर के औज़ारों के जीवाष्मों की पुष्टि हुई। इससे यह स्पष्ट हो गया कि उत्तरी

यूरोप में भौगोलिक परिदृश्य के अपने वर्तमान स्वरूप को ग्रहण करने से पहले भी मनुष्य रहते थे। यह लंबे मानव इतिहास की शैश्व्यवस्था का काल था। सर जॉन लुब्बौक ने अपनी पुस्तक *प्रीहिस्टौरिक टाइम्स* (1865) में Prehistory (प्राक्-इतिहास) नामक एक नए विज्ञान के जन्म की बात कही। उन्होंने पाषाण युग को पुरापाषाण युग और नवपाषाण युग में विभाजित किया। और 19वीं शताब्दी के अंत तक न केवल एक मध्यवर्ती चरण, जिसे मध्यपाषाण काल कहा जाता है, को पुरापाषाण और नवपाषाण युगों के बीच प्रस्तावित किया गया, बल्कि कांस्य और लौह युगों के भीतर भी कई चरणों को चिहिन्त किया गया। इसके अलावा, फ्रांस में गुफा एवं मैदानी स्थलों से प्राप्त सांस्कृतिक अनुक्रम के आधार पर पुरापाषाण को तीन चरणों में विभाजन की बात कही गई : निम्न, मध्य और उच्च।

2.4 भारत की भौगोलिक विशेषताएँ

भारत (या सामान्य भौगोलिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों के दृष्टिकोण से दक्षिण एशिया) उपमहाद्वीपीय स्तर पर एक अलग भौगोलिक इकाई है। भारतीय परिदृश्य शिकार-संग्रहण की सफल जीवन पद्धति की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति से परिपूर्ण हैः शिकारी-संग्रहकर्ता समूहों के स्वछंद संचलन के लिए उपयुक्त भू-भाग, उपकरण बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की मूल चट्टानों और सिलिकामय (siliceous) पत्थरों की उपलब्धता, बड़ी और छोटी धाराओं और झरनों के रूप में बारहमासी जल निकायों की मौजूदगी, और जंगली पौधों तथा पशु खाद्य पदार्थों की एक विशाल विविधता की उपलब्धता। इसलिए, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि समुचित हिमालयी प्रदेश एवं सिंधु-गंगा के जलोढ़ भूभाग को छोड़कर पाषाण युगीन मानव समूह पूरे भारतीय भू-भाग पर फैल गए।

2.5 भारतीय पुरापाषाण काल के चरण एवं काल निर्धारण

भारतीय पुरापाषाण विकास तीन चरणों में विभाजित है :

i) निम्न,

ii) मध्य, और

iii) उच्च।

निम्न पुरापाषाण युग की दो सांस्कृतिक परंपराएँ हैं :

i) सोहनियन (Soanian)[1], कंकड़ की उपकरण परंपरा, और

ii) भारतीय प्रायद्वीपीय कुल्हाड़ी-विदारक पंरपरा।

इन परंपराओं में बड़े कंकड़ों या परतों (Flakes) से गँड़ासे और काटने के उपकरण, कुल्हाड़ियाँ, विदाकर (Cleavers), चाकू जैसे औज़ारों का निर्माण शामिल है। मध्य पुरापाषाण काल में खुरचनी, नोक (Point), छिद्रक (Borer) और अन्य उपकरणों का निर्माण विभिन्न प्रकार के शल्कों (Flakes) को मूल पत्थरों (Cores) से निकाल कर किया जाता था। आगे चलकर, उच्च पुरापाषाण काल में इन औज़ारों में और परिष्करण हुआ। अब, छेदक/छिद्रक (punch) तकनीक द्वारा बेलनाकार मूल पत्थरों से काटकर एक श्रृंखला में बनाए गए लंबे, समानांतर पक्षीय (parallel-sided) ब्लेडों पर बनाए जाने वाले औज़ारों, जैसे कि कुंद किए गए (blunted) और क़लमतराश (Penknife) ब्लेडों, दाँतेदार (serrated) किनारों वाले ब्लेडों और तीर अंकों (Arrow Points) आदि का निर्माण किया जाने लगा।

[1] इस शब्द का उद्भव सोन नदी के नाम से हुआ है।

सापेक्ष काल-निर्धारण के अलावा, हाल के वर्षों में कुछ स्थलों का 'रेडियोकार्बन', पुराचुम्बकत्व (Palaeomagnetism), ताप-संदीप्ति प्रणाली (Thermoluminiscence), 'पोटेशियम-आर्गन', 'आर्गन-आर्गन' और 'यूरेनियम-थोरियम' जैसी वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से सटीक और असंदिग्ध दिनांकन कर पाना पूर्णतः संभव हो गया है।

2.6 पुरापाषाण काल के पुरातात्विक साक्ष्य

पुरापाषाण काल के पुरातात्विक स्थल मुख्यतः दो प्रकार के हैं:

i) मैदानी स्थल/अनावृत स्थल, और

ii) शैलगुफाएँ (Rock-shelters)।

मैदानी स्थल भारत के सभी हिस्सों में पाए जाते हैं और बड़ी-छोटी नदियों पर या उनके पास तथा पहाड़ी इलाकों की आंतरिक घाटियों या गिरिपाद (foothill) क्षेत्रों में होते हैं। ये अपक्षीण/ऋतुक्षरित (weathered) आधार-शैल (bedrock) या फिर नरम गाद (silt) पर पाए गए वास्तविक स्वस्थानी (*insitu*) या अबाधित स्थलों से लेकर मिश्रोढक (Colluvium) और नदी-जनित बजरी (gravels) के रूप में होने वाली विभिन्न प्रकार की गठन प्रक्रियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। शैलगुफाएँ पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती हैं जो अवसादित/तलछटी (sedimentary) पत्थरों अथवा चट्टानों (बलुआ पत्थर एवं चूना पत्थर) से ढके होते हैं। मध्य प्रदेश में भीमबेटका परिसर और आंध्र प्रदेश में कर्नूल/कुरनल गुफाएँ प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

2.7 भारत में निम्न पुरापाषाण काल

जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं, भारत में निम्न पुरापाषाण के चरणों में (मानचित्र 2.1) दो प्रमुख औज़ार निर्माण की सांस्कृतिक परंपराएं आती हैं जो निम्नांकित हैं:

अ) पूर्व और दक्षिणी-पूर्व एशियाई गँड़ासे-काटने के उपकरण बनाने की परंपरा के एक अंश के रूप में सोहनियन परंपरा, और

ब) 'पुरातन विश्व' (अफ्रीका, पश्चिमी यूरोप, पश्चिमी और दक्षिण एशिया) के पश्चिमी भाग से व्यापक रूप से जानी गयी अशूलियन (Acheulian) परंपरा का गठन करते कुल्हाड़ियों-विदारकों या दोहरी सतह वाले (biface) उपकरणों के संग्रह।

> **''पुरातन विश्व (Old World)''** शब्द का प्रयोग पश्चिमी विश्व में अफ्रीका, यूरोप और एशिया (एफ्रो-यूरेशिया अथवा पूर्वी गोलार्ध) को संदर्भित करने के लिए किया जाता है जिसे सामूहिक रूप से विश्व के उस हिस्से के रूप में माना जाता है जो अमरीका और ओशिनिया (Oceania) या ''नवीन विश्व (New World)'' या पश्चिमी गोलार्ध कहे जाने वाले हिस्से से संपर्क में आने से पहले था।
>
> **स्रोतः https://en.wikipedia.org/wiki/Old_World**

सोहनियन सांस्कृतिक परंपरा

इस परंपरा के अस्तित्व को भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में 1939 में केंब्रिज विश्वविद्यालय के टी. टी. पैटर्सन और येल विश्वविद्यालय के एच. डी. टैरा द्वारा पहचाना गया। अपने क्षेत्रीय अध्ययन (Field Study) के आधार पर उन्होंने सोन नदी पर पाँच सोपानों (terraces) की एक श्रृंखला की पहचान की जो सिंधु जल निकासी प्रणाली का

हिस्सा थी। सोपान कश्मीर घाटी की हिमनदियों एवं अंतर-हिमनदियों से मिलते-जुलते हैं और स्तर विन्यास एवं वर्गीकरण के आधार पर इन्हें सोन संस्कृति अनुक्रम (culture sequence) का नाम दिया गया।

उपकरणों में अधिकांश एक या दोनों सतहों/बाह्य परतों के शल्कन (Flaking) द्वारा प्राप्त कंकड़ों (pebbles) के औज़ार हैं जिनकी दोनों छोरों/किनारों पर धार होती है (चित्र 2.1)। ये मुख्यतः गँड़ासों और काटने के औज़ारों के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

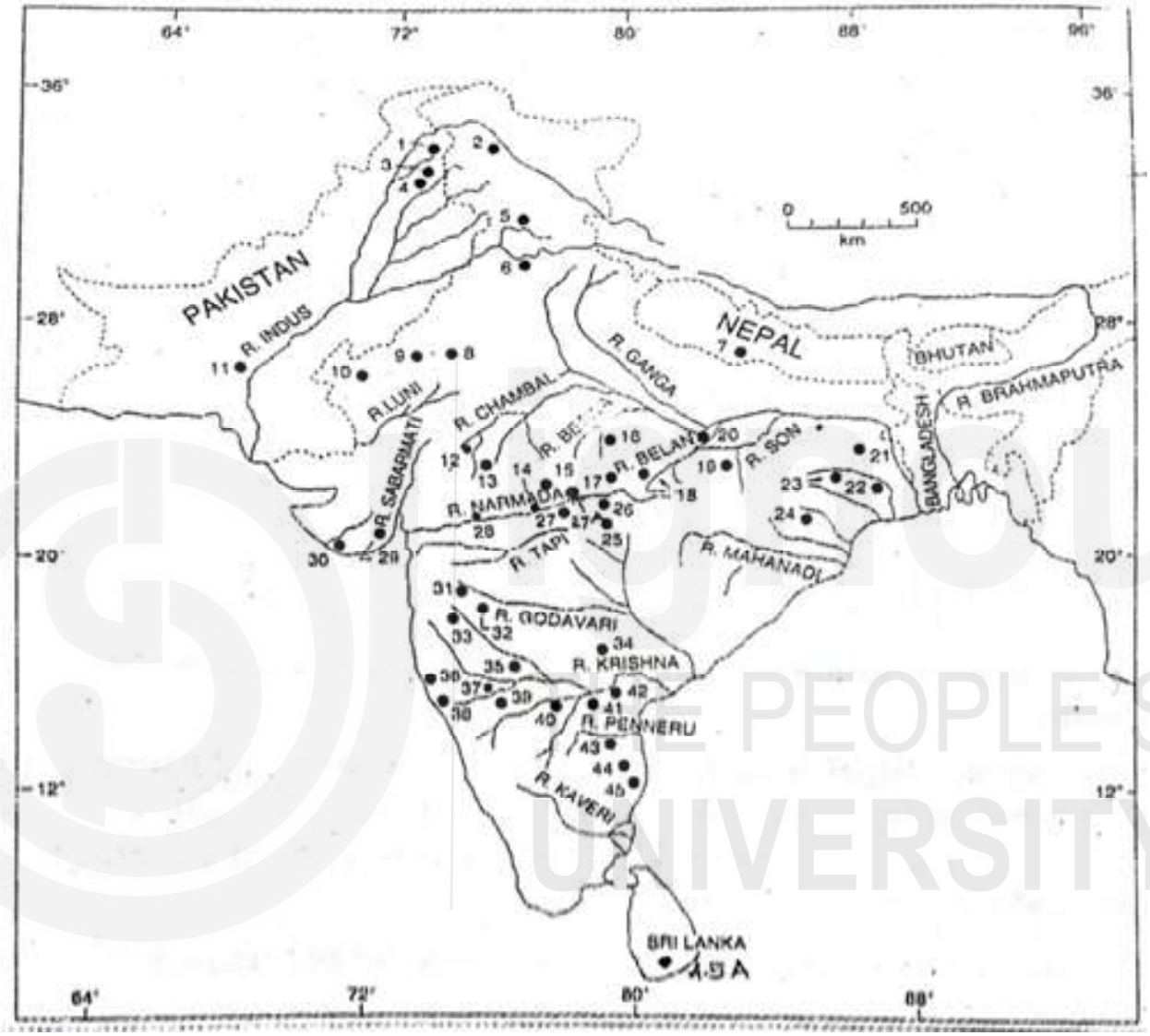

मानचित्र 2.1: भारत में महत्वपूर्ण निम्न पुरापाषाण कालीन स्थल। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड 5। दक्षिण एशिया में महत्वपूर्ण निम्न पुरापाषाणीय स्थल।

1) रिवात (Riwat); 2) पहलगाम; 3) जलालपुर; 4) दीना (Dina); 5) ब्यास-बाणगंगा परिसर; 6) सिरसा-घग्गर परिसर; 7) डंग-डियोखुरी (Dang-Deokhuri) परिसर; 8) डीडवाना; 9) जायल; 10) जैसलमेर-पोखरण मार्ग; 11) ज़िआरात पीर शाबान (Ziarat Pir Shaban); 12) बेराच (Berach) परिसर; 13) चंबल परिसर; 14) भीमबेटका; 15) रायसेन परिसर; 16) ललितपुर; 17) दमोह (Damoh) परिसर; 18) सोन परिसर; 19) सिहावल; 20) बेलन परिसर; 21) सुसुनिया (Sisunia); 22) सिंहभूम; 23) पैसरा (Paisra); 24) ब्राह्मणी (Brahmani) परिसर; 25) वैनगंगा परिसर; 26) महादेव (Mahadeo) पिपरिया; 27) आदमगढ़; 27) हथनोरा; 28) दुरकड़ी (Durkadi); 29) समाधियल (Samadhiala); 30) उमरेठी; 31) गंगापुर; 32) चिरकी-नेवासा; 33) बोरी (Bori); 34) नालगोंडा; 35) हुंस्गी (Hunsgi) और बैचबल (Baichbal) घाटी परिसर; 36) महाड; 37) अनगवाड़ी (Anagwadi); 38) मालवन/मालवण; 39) लखमापुर (Lakhmapur); 40) नित्तूर (Nittur); 41) कर्नूल परिसर; 42) नागार्जुनकोंडा परिसर; 43) कुड्डापाह (Cuddapah) परिसर; 44) रल्लकलवा (Rallakalava); 45) कोर्टाल्लयर (Kortallayar) परिसर; 45) रत्नापुरा (Ratnapura) परिसर।

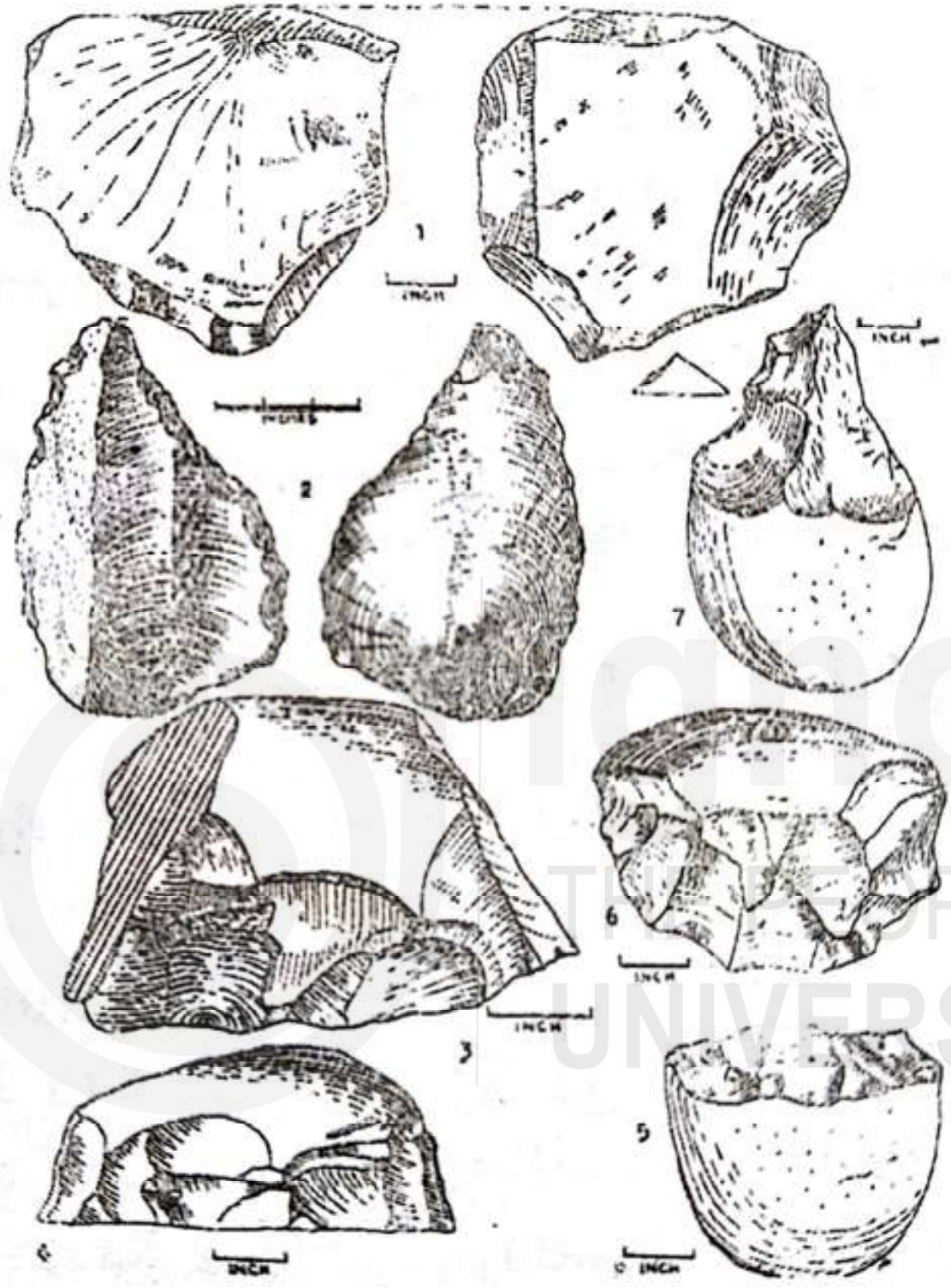

चित्र 2.1: प्रारंभिक सोन परंपरा के धारदार और चपटे औज़ार। स्रोतः एम.ए.एन.-002, खंड 5, इकाई 1।

रॉबिन डनल, जिन्होंने 1980 के दशक में इस क्षेत्र (जो अब पाकिस्तान में है) में कार्य किया, ने टैरा और पैटर्सन द्वारा प्रस्तुत पुराकालीन मौसम/जलवायु की व्याख्या और सांस्कृतिक अनुक्रम पर सवाल उठाया। लेकिन भारतीय प्राक्-इतिहास में ''सोन संस्कृति'' एक महत्वपूर्ण बिंदु है। सीमा के भारतीय भाग से कंकड़ के बने उपकरणों के जमावड़े हरियाणा में सिरसा और घग्गर की घाटियों में, हिमाचल प्रदेश की ब्यास और बाणगंगा घाटियों में और शिवालिक पर्वतों की अग्र श्रृंखला पर बसे होशियारपुर-चंडीगढ़ वृत्त-खंड में पाए गए (चित्र 2.2)।

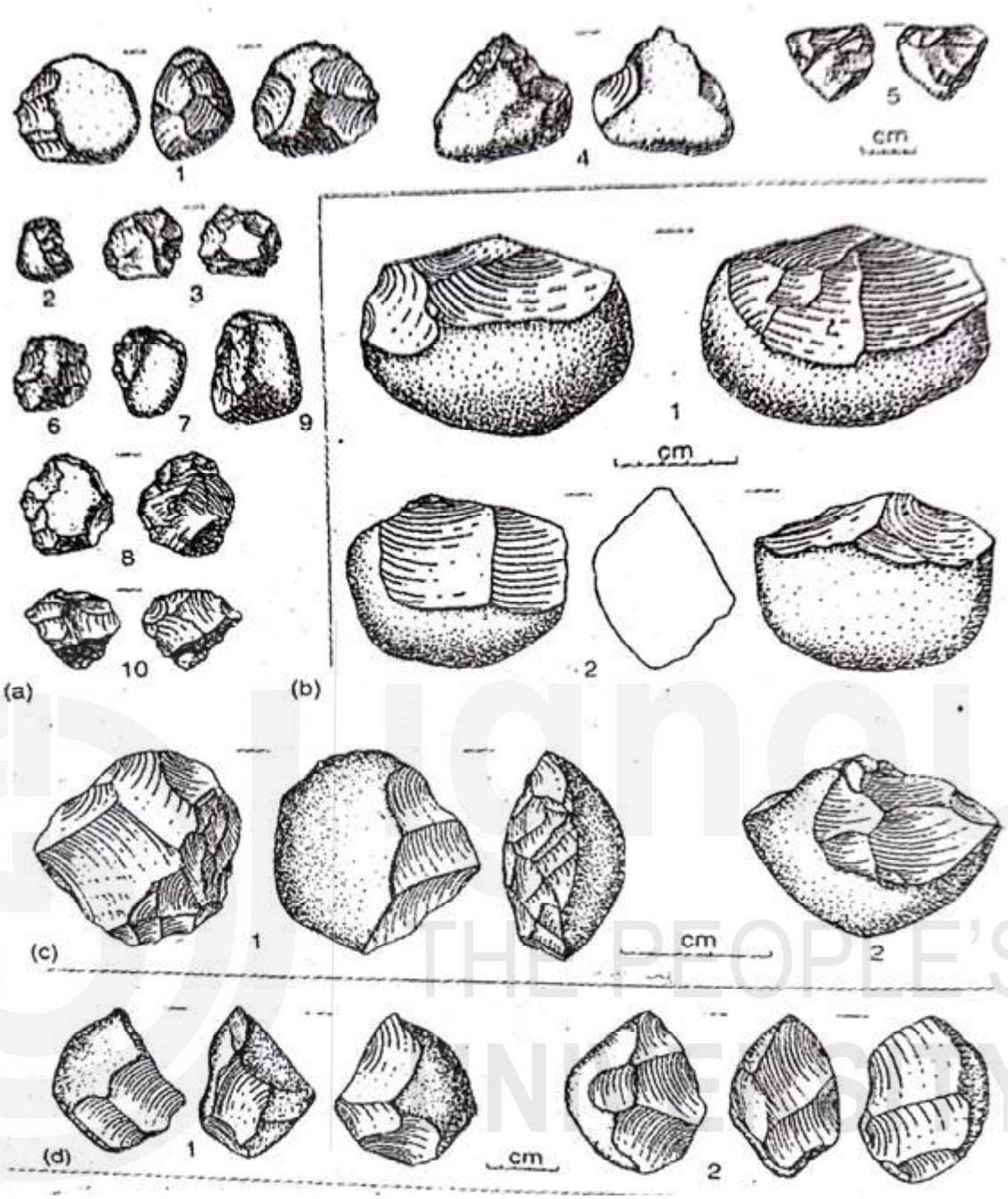

चित्र 2.2: भारत में निम्न पुरापाषाण काल के कंकड़ से बने उपकरण : अ) नित्तूर (Nittur), कर्नाटक; ब) जैसलमेर-पोखरण मार्ग, राजस्थान; स) सिरसा घाटी, हरियाणा; द) महादेव (Mahadeo) पिपरिया, मध्य प्रदेश। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड 5, इकाई 1।

पंजाब की सोन संस्कृति से संबंधित जमावड़ों को कुछ पुरातत्वविदों/विद्वानों द्वारा मध्य पुरापाषाण परंपरा का बताया गया है।

अशूलियन (Acheulian) सांस्कृतिक परंपरा

'अशूलियन' शब्द का प्रयोग कुल्हाड़ियों तथा विदारकों के रूप में उन्नत और तेजी से बढ़ते सममित/सममितीय (symmetrical) आकारों को दर्शाते औज़ारों के जमावड़ों के लिए किया जाता है। उपकरण बनाने के लिए क्वार्टजाइट (Quartzite) को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। प्राकृतिक रूप से जहाँ इसकी उपलब्धता नहीं थी, अशूलियन मानव समूह अन्य उपलब्ध पत्थरों का प्रयोग करते थे जैसे भीमा घाटी में चूना पत्थर, महाराष्ट्र में डोलराइट (Dolerite) एवं असिताष्म (Basalt), और बिहार एवं बंगाल में शीलीभूत लकड़ी (Fossil Wood)। पत्थर के हथौड़े, नरम हथौड़े और उद्यत आन्तरक (prepared core)

तकनीकों के माध्यम से परतों/टुकड़ों को अलग करके उन्हें औज़ारों का रूप दिया जाता था।

पत्थर के उपकरण प्रमुख साक्ष्य हैं जिनके माध्यम से प्रागैतिहासिक लोगों के रहन-सहन को समझा जा सकता है। पुरातत्वविद इन पत्थर के उपकरणों को परिभाषित करने के लिए निश्चित शब्दावली का प्रयोग करते हैं। यदि किसी बड़े पत्थर को जानबूझकर एक या अधिक भागों में तोड़ा जाता है, सबसे बड़े हिस्से को मूल पत्थर (Core) और इससे बने उपकरण को मूल पाषाण उपकरण (core tool) कहा जाता है। मूल चट्टान से तोड़कर अलग किए गए छोटे टुकड़ों को परत (Flakes) और इससे बने उपकरणों को परत उपकरण (flake tools) कहा जाता है।

समय के विभिन्न चरण

भारत में निम्न पुरापाषाण काल : 600,000 वर्ष बी.पी. (Before Present) से 150,000 वर्ष बी.पी.

भारत में मध्य पुरापाषाण काल : 165,000 वर्ष बी.पी. से 31,000 वर्ष बी.पी.

भारत में उच्च पुरापाषाण काल : 40,000 वर्ष बी.पी. से 12,000 वर्ष बी.पी.

निम्न पुरापाषाण काल के महत्वपूर्ण स्थलः

1) पश्चिमी राजस्थान के सिंगितलव (SingiTalav) में कुल्हाड़ियों/गँड़ासों, बहुफलकों (Polyhedrons), दोहरी सतह वाले उपकरणों (Bifaces), खुरचनियों एवं नुकीले औज़ारों (Points) का एक जमावड़ा मिला है।

2) मध्य प्रदेश में भीमबेटका की शैलगुफा संख्या III एफ-23 ने अशूलियन, मध्य पुरापाषाणीय तथा उच्च पुरापाषाणीय स्तरों को दर्शाया है।

3) मध्य प्रदेश के आदमगढ़ ने मध्य पुरापाषाणीय भंडार के नीचे एक अशूलियन स्तर का खुलासा किया है।

4) उत्तर प्रदेश में ललितपुर (झाँसी जिला) में ग्रेनाइट निर्मित उपकरणों का एक प्रारंभिक और प्राचीन स्वस्थान (*In situ*) जमावड़ा प्राप्त हुआ है।

5) बिहार के मुंगेर जिले के पैसरा में एक प्रारंभिक अशूलियन जमावड़ा मिला है। खुदाई में गड्ढों (post-holes) के संरक्षणों (alignments) व पाषाण खंडों (stone blocks) की गोलाकार व्यवस्था के रूप में झोपड़ीनुमा आवासीय संरचनाएं उद्धारित हुई हैं।

6) महाराष्ट्र के चिरकी-नेवासा में डोलराइट पुरावशेषों के साथ-साथ जंगली मवेशियों एवं अन्य पशुओं की हड्डियों के जीवाष्म मिले हैं। यह स्थल मौसम के अनुसार बना हुआ एक शिविर था जिसका इस्तेमाल विभिन्न उद्देश्यों के लिए होता था। इन पुरावशेषों में कुल्हाड़ियों, खुरचनियों और चाकुओं के साथ-साथ बिल्लौर और सिक्थ स्फटिक (Chalcedony) से बने छोटे-छोटे परतदार उपकरणों (flake tools) का भंडार भी शामिल है।

7) भीमा जलप्रवाह घाटी में दक्कन असिताष्म भूदृश्य (Deccan Basalt Landscape) के एक स्थल मोरगाँव (Morgaon) से विदारकों और कुल्हाड़ियों समेत 162 नमूने मिले हैं।

8) उत्तरी कर्नाटक में हुंस्गी (Hunsgi) घाटी में हुंस्गी तथा बैचबल (Baichbal) घाटी में येदियापुर से स्वस्थान सांस्कृतिक चरणों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। यहाँ कई पुरावशेष प्राप्त हुए हैं।

9. उत्तरी कर्नाटक में हुंस्गी घाटी में स्थित इसमपुर (Isampur) एक खदान-सह-शिविर स्थल है। यहाँ मूल पत्थरों (Cores), अधूरे शल्कों/फलकों (Flake Blanks), पूर्णतः निर्मित औज़ारों एवं चूना पत्थर के अपशिष्ट उत्पाद मिले हैं (चित्र 2.3 और 2.4)। हिरन एवं कछुए के खोल के अवशेष भी मिले हैं। इसमपुर ने हुंग्सी घाटी के इस हिस्से में एक स्थानीयकृत केन्द्र के रूप में कार्य किया, जहाँ से आदि मानव (Hominins) अपनी दैनिक संगृहण प्रक्रिया के लिए आसपास के चूना पत्थर के पठारों और घाटी के तलों में भ्रमण करते थे।

10) तमिलनाडु के एक स्वस्थान अशूलियन स्थल अत्तिरम्पक्कम से अबरक (Quartzite) और जंगली मवेशियों एवं अन्य प्रजातियों की हड्डियों के जीवाष्म अशूलियन जमावड़े मिले हैं। एक विकसित वैज्ञानिक तकनीक के माध्यम से हाल ही में इस स्थल का काल 15 लाख वर्ष बी.पी. निर्धारित किया गया है।

चित्र 2.3: कर्नाटक के इसमपुर में पूरातात्विक गर्त I में अशूलियन स्तर की खोज। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड 5, इकाई 1।

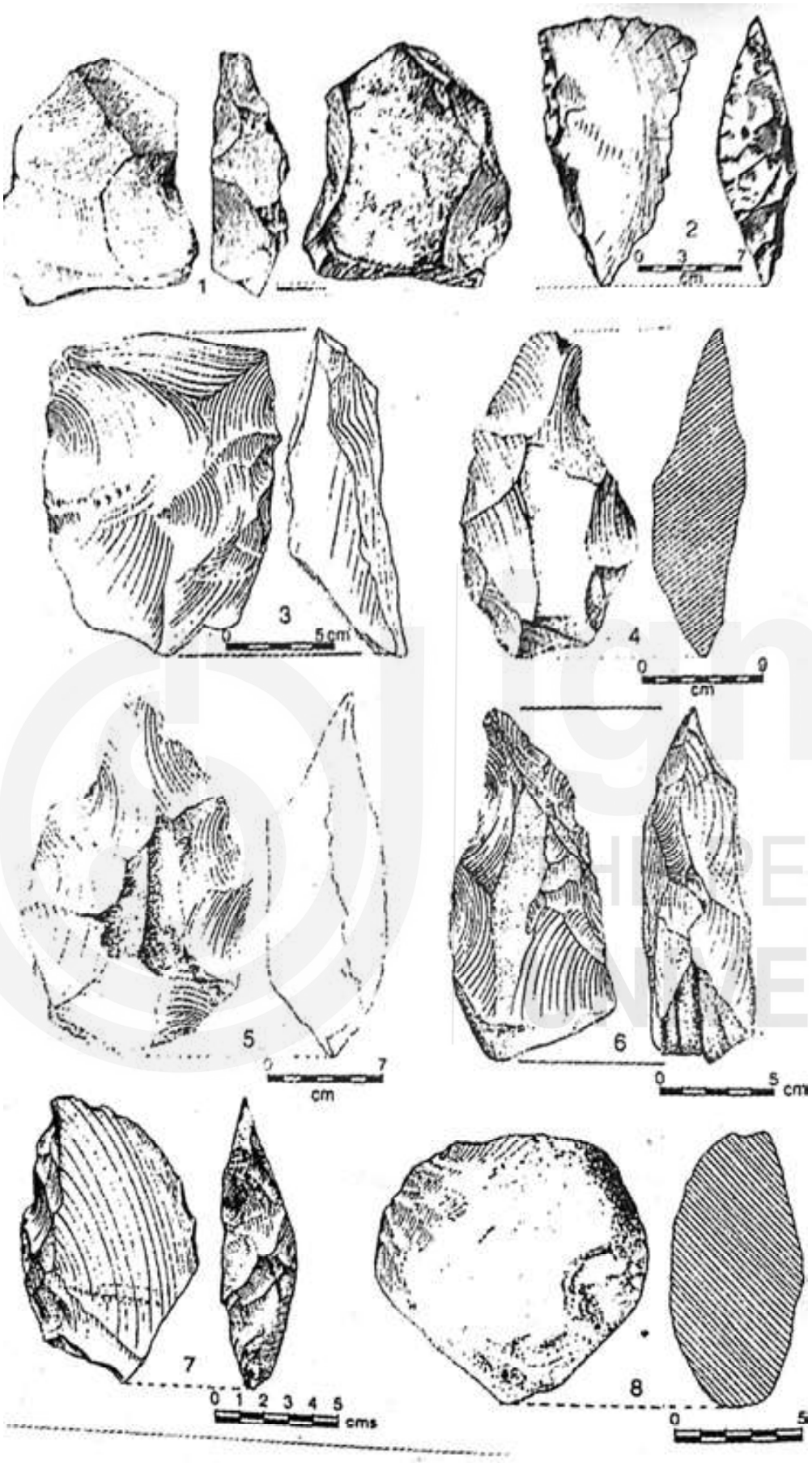

चित्र 2.4: इसमपुर, कर्नाटक से प्राप्त निम्न अशूलियन पुरावशेष 1.) मूल पत्थर (**Cores**); 2) और 3) विदारक; 4) और 5) कुल्हाड़ियाँ; 6) छेदक (**Perforators**); 7) चाकू; 8) हथौड़े। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-1।

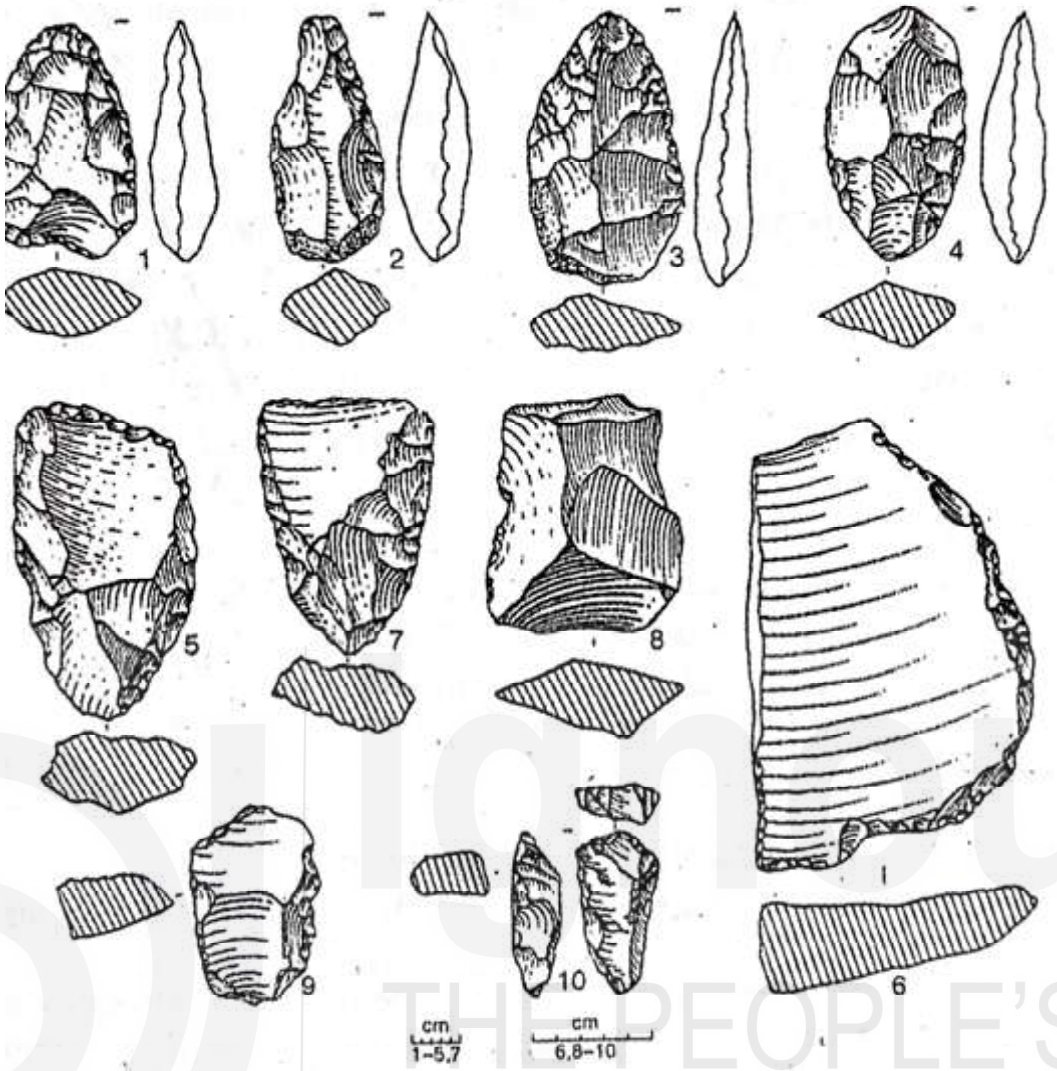

चित्र 2.5: भीमबेटका, मध्य प्रदेश के शैलाश्रय-III एफ-23 से प्राप्त विकसित अशूलियन पुरावशेष। स्रोतः एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-1. 1 से 4) कुल्हाड़ियाँ; 5 और 7) विदारक; 6) उत्तलनुमा (Convex) खुरचनी; 8) ताखदार (Notched) उपकरण; 9) दांतेदार औज़ार/दंतुर (Denticulate); 10) फल खुरचनियाँ (End-Scrapers)।

2.8 मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ

मध्य पुरापाषाण संस्कृति निम्न पुरापाषाण संस्कृति के बाद का चरण है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, निम्न पुरापाषाण कालीन संस्कृति की विशेषता हस्त-कुल्हाड़ियों (Hand-axes) और विदारकों जैसे वज़नदार हथियार हैं। दूसरी ओर, मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृति को विशिष्ट तकनीकों से निर्मित फलकों/शल्कों (Flakes) पर बनाए गए विविध प्रकार के औज़ारों से जाना जाता है। इसलिए, इसे व्यापक स्तर पर शल्क उपकरण (flake tool) उद्योग भी कहा जाता है। यूरोप, दक्षिण-पश्चिमी एशिया और अफ्रीका की मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृति को मुस्टेरियन (Mousterian) संस्कृति भी कहा जाता है, जिसे फ्रांस में ल मूस्तिये (Le Mostier) नामक शैलाश्रय के नाम पर रखा गया है। मुस्टेरियन संस्कृति से जुड़ी मानव प्रजाति विलुप्त हो चुकी *होमो निएंडरथेलेंसिस* (*Homo Neanderthalensis*) थी। इस प्रजाति का लोकप्रिय नाम निएंडरथल (Neanderthal) मानव है। वह उच्च प्रातिनूतन (Upper Pleistocene) युग में रहता था।

हस्त-कुल्हाड़ी (Hand-axe): सामान्यतः यह मूल पत्थर से बना एक उपकरण है। यह एक दोहरी सतह का औज़ार है क्योंकि इसके दोनों किनारों को तराशा जाता है। मौटे तौर पर यह त्रिकोणीय आकार का होता है, जो एक तरफ़ से चौड़ा और दूसरी तरफ़ से नुकीला होता है। यह पीछे की तरफ़ से हाथ में लेकर उपयोग किया जाता है। इसे कभी-कभी हत्थों (Handles) के रूप में ताड़वृंत (haft) किया जाता है।

विदारक (Cleaver) : एक सपाट उपकरण है जो एक चौड़े आयताकार या त्रिकोणीय शल्क (Flake) पर बना होता है। इसके एक सिरे पर एक चौड़ी, काटने वाली सीधी धार होती है।

गंड़ासा (Chopper) : एकल सतह वाला बड़ा उपकरण जिसके सिर्फ एक किनारे को घिसकर तैयार किया जाता है।

काटने का उपकरण (Chopping tool) : एक मूल पत्थर या एक कंकड़ पर बना एक औज़ार जिसकी दोनों सतहों को एक लहराती धार बनाने के उददेश्य से बारी-बारी से तराशा जाता है।

स्रोत : एच. डी. सांकलिया (1964) 1982 पृ. सं. 45-58

मुस्टेरियन उद्योग

मुस्टेरियन उद्योग यूरोप, दक्षिण-पश्चिमी एशिया और अफ्रीका में निएंडरथल प्रजाति द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपकरण बनाने की एक मध्य पुरापाषाण युगीन परंपरा है। पत्थर के उपकरण बनाने वाले उद्योग की व्यापकता, जिसमें पूर्ववर्ती सांस्कृतिक चरण की हस्त-कुल्हाड़ियों और विदारकों के विपरीत मुख्य रूप से फलक (Flakes) बनाए और प्रयुक्त किए जाते थे, की शुरुआत मध्य प्रातिनूतन (Pleistocene) युग के अंत के आसपास मानी गई है। फलकों का निर्माण शिकार करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले विकसित उपकरणों के रूप में तकनीकी परिवर्तन का सूचक है। इस नई तकनीक में, पहले से तैयार एक मूल पत्थर (Core) से एक झटके में बनाए गए एक संपूर्ण औज़ार का निर्माण किया जाता था जिसके दौरान यह सुनिश्चित किया जाता था कि अलग किए गए शल्कों (Flakes) को विशिष्ट आकार/स्वरूप दिया जा सके। इतना ही नहीं, अलग किये गये शल्कों/पत्तरों को अनेक उपकरणों में ढाला जा सकता था। विभिन्न कार्यों के लिए अनेक प्रकार के उपकरण बनाना आसान हो गया था।

भारत में मध्य पुरापाषाण काल

भारत में मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृति के चरण की विशेषता को परतदार उपकरण उद्योग द्वारा चित्रित किया जाता है। 1956 में एच. डी. सांकलिया ने पहली बार इन परतदार उपकरणों का उल्लेख किया एवं प्रदर्शित किया जो पहले प्रवर (नेवासा, महाराष्ट्र) में और बाद में उत्तरी कर्नाटक की गोदावरी घाटी में पाया जाता है। उन्होंने इस उद्योग को नेवासियन (मुस्टेरियन की तरह) कहा। शीघ्र ही, उनके उत्तरवर्ती शोध से ज्ञात होता है कि नेवासियन कोई स्थानीय घटना नहीं थी बल्कि भारतीय पाषाण युगीन संस्कृति की सामान्य विशेषता थी। शुरुआत में, भारतीय प्राक्-इतिहास के इस काल के लिए मध्य पाषाण युग शब्द का प्रयोग किया गया। बाद में, मध्य पुरापाषाण को स्वीकार कर लिया गया।

मध्य पुरापाषाण उपकरण पत्तरों से बनाए जाते थे और पत्तरों की धार पत्तर के मूल पत्थर, गोलाकार और विशेष लेवालोय (Levallois) तकनीक से तैयार की जाती थी। कुछ क्षेत्रों में, उत्तरवर्ती अशूलियन पाषाण परंपरा में दो धारी पत्तरों की तीक्ष्णता में निरंतरता है, और ऐसा ही छोटी हस्त-कुल्हाड़ियों, विदारकों एवं अन्य उपकरणों में

दिखाई देती है। अनेक इलाकों में, कच्ची सामग्री के रूप में अबरक जैसे दानेदार पत्थरों के बदले बिल्लौर, सूर्यकांत मणि, सिक्थ स्फटिक, गोमेद इत्यादि मज़बूत पत्थरों का उपयोग मिलता है।

भारतीय मध्य पुरापाषाण काल के विभिन्न उपकरण विभिन्न प्रकार की खुरचनियाँ हैं: एक तरफा, दो तरफा, सतहनुमा, सीधी, टेढ़ी, अवतल, उत्तल, अवतल-उत्तल, नोकदार और मूल-पत्थर खुरचनी, सुतारी, एक तरफ़ धार वाली, दोनों तरफ़ नोक वाली, लेवालोय (Levallois) नोक वाली घुमावदार और चौड़ी, लघु हस्त-कुल्हाड़ियाँ एवं विदारक, और उपयोग किए जा चुके फलक। अहरन/सन्दान (Anvils) और हथौड़े भी निर्माण स्थल पर पाए गए हैं (चित्र 2.6)।

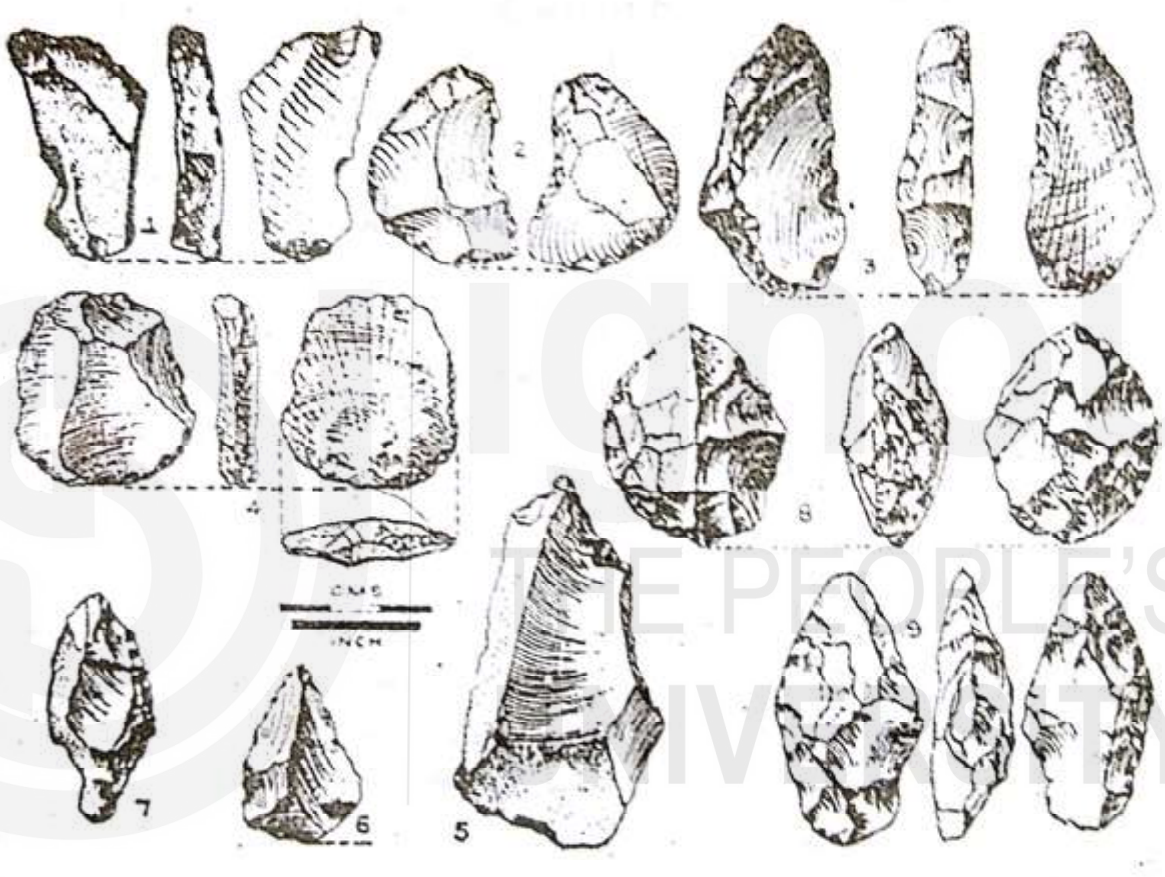

चित्र 2.6: मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-2।

उपकरणों के निर्माण के लिए जिन तकनीक का उपयोग किया गया वे हैं : हथौड़ा, बेलनाकार हथौड़ा और लेवालोय (Levallois)। कच्ची सामग्री के रूप में जिन पत्थरों का उपयोग किया गया वे दानेदार अबरक से लेकर बिल्लौर, सूर्यकांत मणि और सिक्थ स्फटिक हैं।

लेवालोय तकनीक : पेरिस के एक उपनगर लेवालोय के नाम पर इस तकनीक का नाम रखा गया, जहाँ से एक खास प्रकार का मूल पत्थर तैयार किया जाता था। यह तकनीक 'कछुए के आकार वाले मूल पत्थर' से निर्मित एक नए उपकरण का उत्पादन करती थी जिस पर एक बार चोट करने पर परतें झड़ जाती थी। इसे 'मूल पत्थर को तैयार करने वाली तकनीक' (Prepared Core technique) भी कहा जाता है।

मानचित्र 2.2: भारतीय मध्य पुरापाषाण काल के स्थल (वी. एन. मिश्रा, 1989)। स्रोत : एम.एच. आई.-08, खंड-2, इकाई-5।

मध्य पुरापाषाण कालीन स्थल

भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश भाग में मध्य पुरापाषाण काल के स्थल मिलते हैं। मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण नदियों द्वारा निर्मित पथरीले जमावड़ों के रूप में मिलते हैं जो हमें वहाँ की जलवायु की अवस्था के बारे में बताते हैं। इन स्थलों में कुछ निम्नांकित हैं:

1) राजस्थान में दिदवाना
2) गुजरात में हिरन घाटी
3) सिंधु और झेलम नदियों के बीच पोटवार पठार
4) पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में संघाव (Sanghao) गुफा
5) राजस्थान में बुद्ध पुष्कर
6) अरावली पहाड़ियों के पश्चिम में लूनी नदी द्वारा प्रदत्त औज़ार उद्योग
7) महाराष्ट्र में चिरकी-नेवासा
8) उत्तर प्रदेश में कलपी

बोध प्रश्न 1

1) पाषाण युग को कितने भागों में बांटा गया है? प्राक्-इतिहास के उद्भव के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय निम्न पुरापाषाण युग की मुख्य सांस्कृतिक परंपराओं की चर्चा करें?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारतीय मध्य पुरापाषाण काल के किन्हीं दो स्थलों की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.9 उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ

उच्च पुरापाषाण काल पुरापाषाण युग का तीसरा और अंतिम उपखंड है जो मानव उपलब्धियों की पराकाष्ठा को दर्शाता है। उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों का विकास यूरोप, दक्षिण-पश्चिमी एशिया, अफ्रीका, दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में उच्च प्रातिनूतन युग के उत्तरवर्ती काल में हुआ, जिसे अतिकालीन (Late) प्रातिनूतन युग के रूप में भी जाना जाता है।

व्यापक तौर पर, उच्च पुरापाषाण काल 40,000 से 10,000 वर्ष पूर्व माना गया है। इस सांस्कृतिक चरण से जुड़ी मानव प्रजाति शारीरिक रूप से आधुनिक होमो सेपियंस (AMHS: Anatomically Modern Homo Sapiens) के नाम से जानी जाती है, जो वर्तमान समय की तथा एकमात्र जीवित मानव प्रजाति है। हम इसी प्रजाति के हैं। उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति मध्य पुरापाषाण काल की मुस्टेरियन या पुराने पत्तरनुमा औज़ारों की संस्कृति के बाद आती है जो पुरातन विश्व (Old World) के विभिन्न हिस्सों में पाई जाती है।

पत्थरों के उपकरणों के निर्माण के क्षेत्र में उच्च पुरापाषाण काल की पहचान इसके तकनीकी विकास से की जाती है। इन औज़ारों में एक ओर धार को तेज किया जाता था तथा दूसरी तरफ़ कुंद रखा जाता था। धार परतदार होती है, लेकिन बहुत पतली और चपटी, जो आकार में लंबी और दोनों तरफ़ से बराबर होती है। धार बनाने के लिए पहले

मूल पत्थर को चारों तरफ़ से घिसकर चिकना किया जाता था। उसके बाद, उसे चारों तरफ़ से काटकर, ठोककर, कई धारों को तैयार किया जाता था। इसका अर्थ था कि धार को अप्रत्यक्ष चोट से न कि प्रत्यक्ष चोट से तैयार किया जाता था। धार या ब्लेड की पहली श्रृंखला के निकलने के बाद दूसरी, तीसरी एवं अन्य श्रृंखलाएँ निकाली जाती थीं जब तक कि मूल पत्थर समाप्त न हो जाए। इस प्रकार, इस ब्लेड बनाने की तकनीक में एक मूल पत्थर से अनेक ब्लेड तैयार किये जाते थे। यह मूल पत्थर देखने में घनक्षेत्र (Prism) के जैसा या बाँसुरीनुमा होता है; अतः इस तकनीक को ''Prismatic Core'' या ''Fluted Core'' तकनीक कहा जाता है। इन ब्लेडों को बहुत अधिक तराशा जाता था, जिसमें इसे कुंद करके अन्य कई उपकरण बनाए जाते थे। इस प्रकार के तराशने को मोटी किनारी बनाना, जिससे आधार प्रदान होता है, (Backing) कहा जाता है और इस प्रक्रिया से बने उपकरणों को आधारयुक्त-ब्लेड-उपकरण (Backed Blade Tools) कहा जाता है। उच्च पुरापाषाण कालीन उद्योग के उपकरण फलक और मूल पत्थर के बने काफ़ी विविध प्रकार

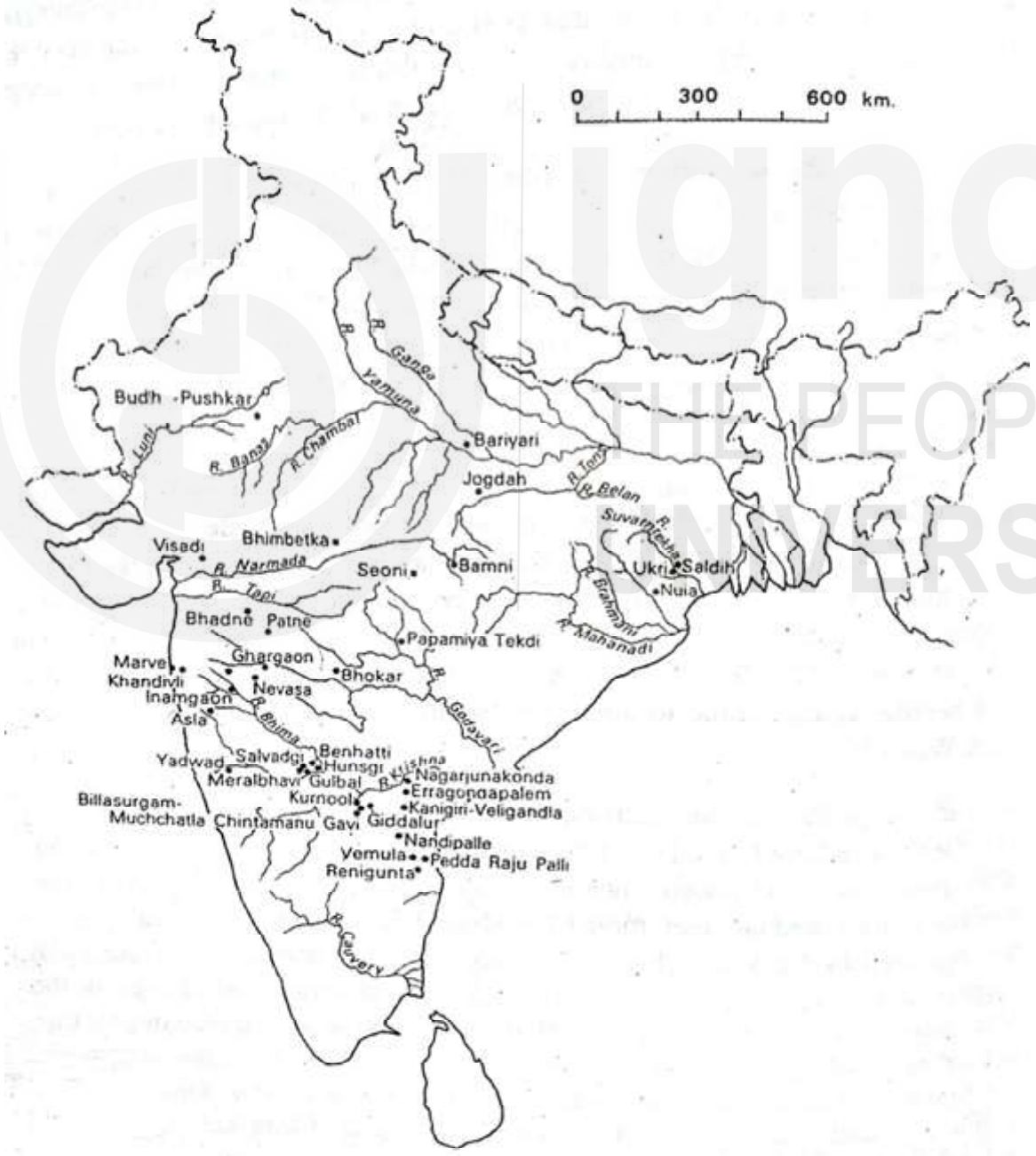

मानचित्र 2.3: भारत में उच्च पुरापाषाण कालीन स्थलों का वितरण। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-3।

के होते हैं, जैसे एकतरफा खुरचनी, अंडाकार खुरचनी, नोकदार खुरचनी, गोलाकार खुरचनी, एक सतह वाली और दोहरी सतह वाली खुरचनियाँ। इनमें से कुछ पत्तर के उपकरण लेवालोय (Levallois) तकनीक व (Discoid core) तकनीक से निर्मित होते हैं और गोलाकार खुरचनियाँ मध्य पुरापाषाण काल की परंपरा की निरंतरता को दर्शाती थे। इनमें से कुछ पत्तरों से बने एकतरफा ब्लेडों को मुट्ठा (Hafts) में जोड़ा जाता था जिससे घेरानुमा या घुमावदार मत्स्यबर्छियाँ (Harpoons) बनाई जाती थीं। इन उपकरणों में दानेदार पत्थरों का प्रयोग कच्ची सामग्री के रूप में किया जाता था।

भारत में उच्च पुरापाषाण काल

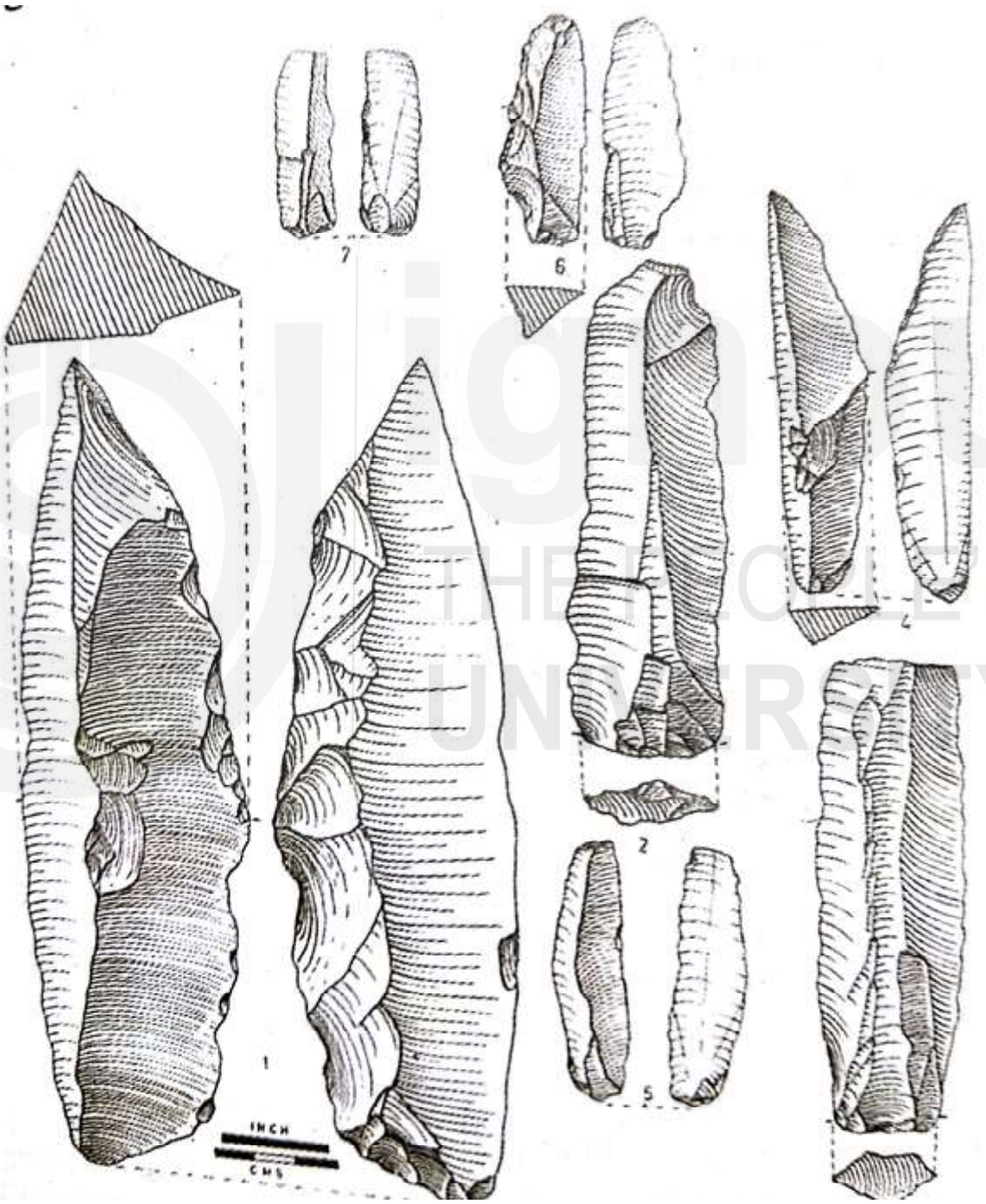

चित्र 2.7: रेनीगुंटा के निकट रल्लाकलावा (Rallakalava) घाटी से प्राप्त ब्लेड-और-तक्षणी उद्योग के पुरावशेष. 1, 4, 6: पुनःसज्जित (Retouched) ब्लेड; 2, 3, 5, 7: साधारण ब्लेड (मूर्थी (Murthi), 1979)। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई 3।

ब्लेड रूपी उपकरण बनाने की तकनीक पर आधारित उच्च पुरापाषाण काल की संस्कृति के अवशेष भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में (मानचित्र 2.3) पत्थर के उपकरणों के रूप में मिलते हैं। चूँकि इनमें से अधिकतर उपकरण कार्बनिक (Carbonic) पदार्थ से बने थे, अतः खुली हवा में ये नष्ट हो गए हैं जिसके कारण इनका पता करना कठिन है। हड्डियों से बने उपकरणों को आंध्रप्रदेश के कर्नूल से प्राप्त किया गया है जहाँ इनके संरक्षण की परिस्थितियाँ अनुकूल थीं।

दक्षिणी पूर्वी घाट (Southern Eastern Ghats) में राल्लाकलावा (Rallakalava) [वेडुल्लाचेरुवू (Vedullacheruvu), नल्लागुंडलू (Nallagundlu)] और गुंजूना (Gunjuna) [पेड्डराजूपल्लि (Peddarajupalli), वोडिकालु (Vodikalu), बेल्लु (Bellu)] घाटियों में से ब्लेड-और-तक्षणी (Burin) उद्योग की पुष्टि करने वाले सर्वोत्तम नमूने मिले हैं (चित्र 2.7-2.10)।

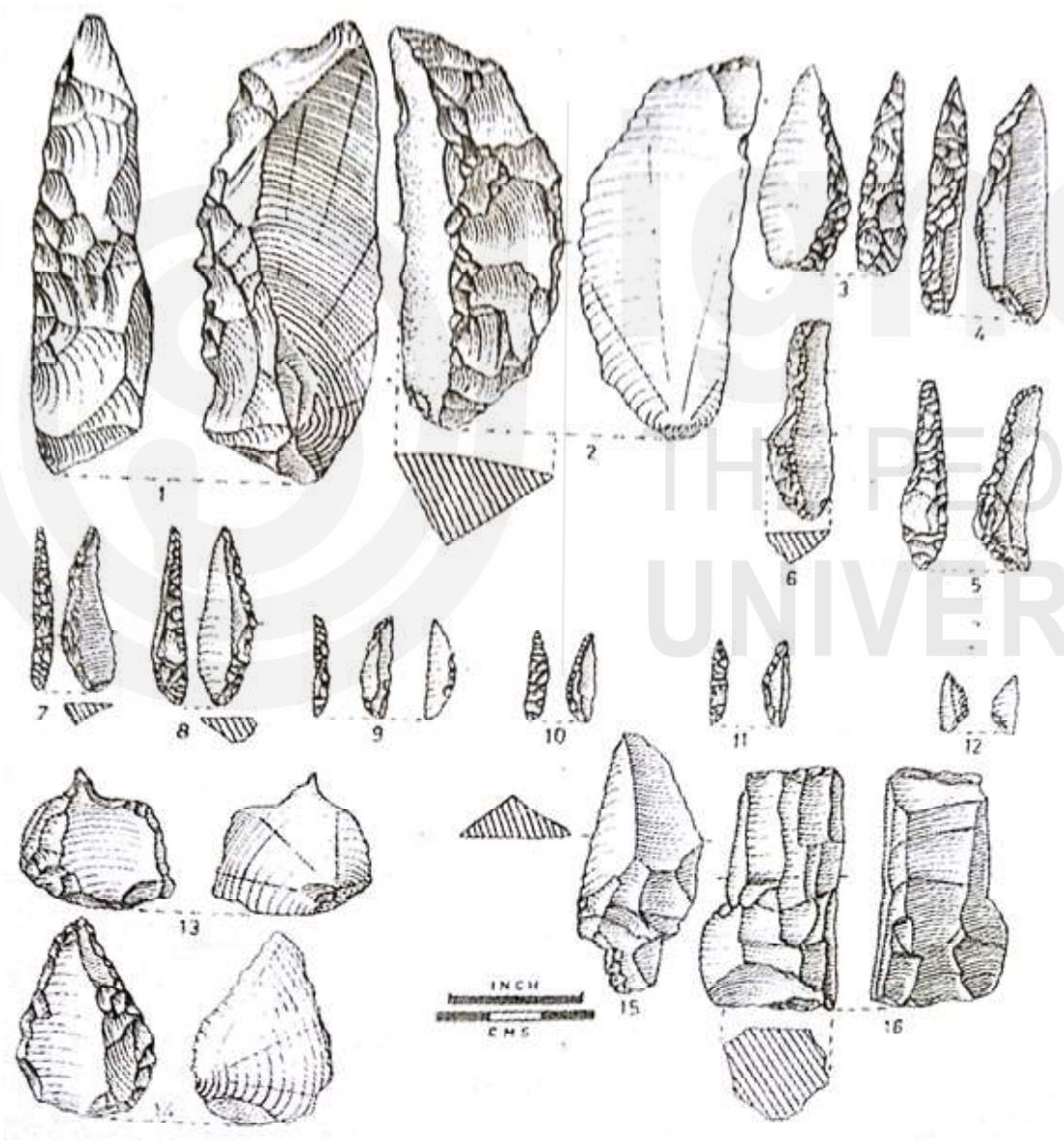

चित्र 2.8: रेनीगुंटा के निकट रल्लाकलावा घाटी से प्राप्त ब्लेड-और-तक्षणी उद्योग की पुरावशेष। 1, 2 आधारयुक्त/मुट्ठानुमा (Backed) चाकू; 3-12 मुद्दानुमा ब्लेड और लघु ब्लेड (Bladelet) वाले उपकरणों के प्रकार (5 और 6 मुद्दानुमा क़लमतराश चाकू (Pen Knives) हैं); 13 सुतारी (Awl); 14 एकतरफा खंती (Unifacial Point); 15 चूलदार (Tanged) खंती; 16 ब्लेडनुमा मूल पत्थर (Blade Core) (मूर्थी (Murthy), 1979)। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-3।

भारत के विभिन्न हिस्सों से प्राप्त उच्च पुरापाषाण काल की रेडियोकार्बन तिथियाँ और कर्नूल की गुफाओं से प्राप्त ताप संदीप्ति काल-निर्धारण पद्धति (Thermoluminiscence) की तिथियाँ 40,000 बी.सी.ई. से 8000 बी.सी.ई. के बीच पड़ती हैं। कर्नूल से प्राप्त उच्च पुरापाषाण काल के पशुओं के अवशेष भी उत्तरवर्ती प्रातिनूतन युग से संबंधित हैं।

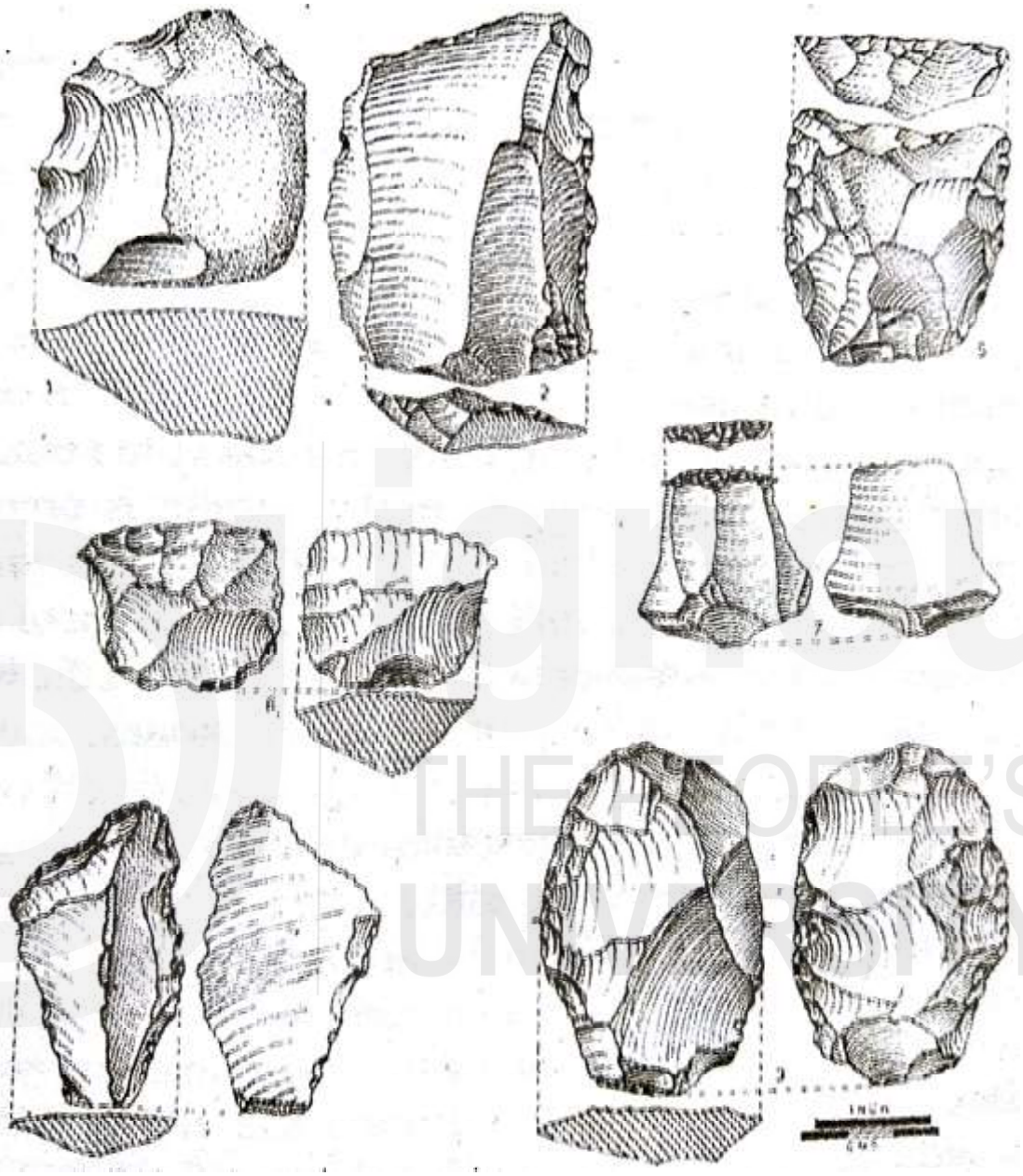

चित्र 2.9: रेनीगुंटा के निकट रल्लाकलावा से प्राप्त ब्लेड-और-तक्षणी उद्योग के पुरावशेष. 1 उत्तलनुमा खुरचनी; 2,4 एकतरफा खुरचनी (Side Scraper); 3 अंडाकार खुरचनी (Ovate Scraper); 5, 6, 7 नुकीली खुरचनी (End Scraper) (मूर्थी, 1979)। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-3।

उच्च पुरापाषाण काल के स्थान

भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ प्रमुख उच्च पुरापाषाण कालीन स्थल निम्नांकित हैं :

1) उच्च सिंध में रोहिरी (Rohiri) की पहाड़ियाँ

2) निम्न सिंध में माइलस्टोन 101

3) बेलन घाटी में चोपानी माण्डो (Chopani Mando)

4) मध्य प्रदेश में बाघोर 1

5) बिहार के मुंगेर जिले में पैसरा

6) बांग्लादेश में लालमाई (Lalmai) पहाड़ियाँ

7) पश्चिमी त्रिपुरा में हाओरा (Haora) और खोवाई (Khowai) नदी घाटियाँ

8) आंध्र प्रदेश में कर्नूल

9) आंध्र प्रदेश में मुच्छातला चिंतामनु गवि (Muchchatla Chintamanu Gavi)

10) आंध्र प्रदेश के चित्तोर (Chittor) जिले में रेनीगुंटा

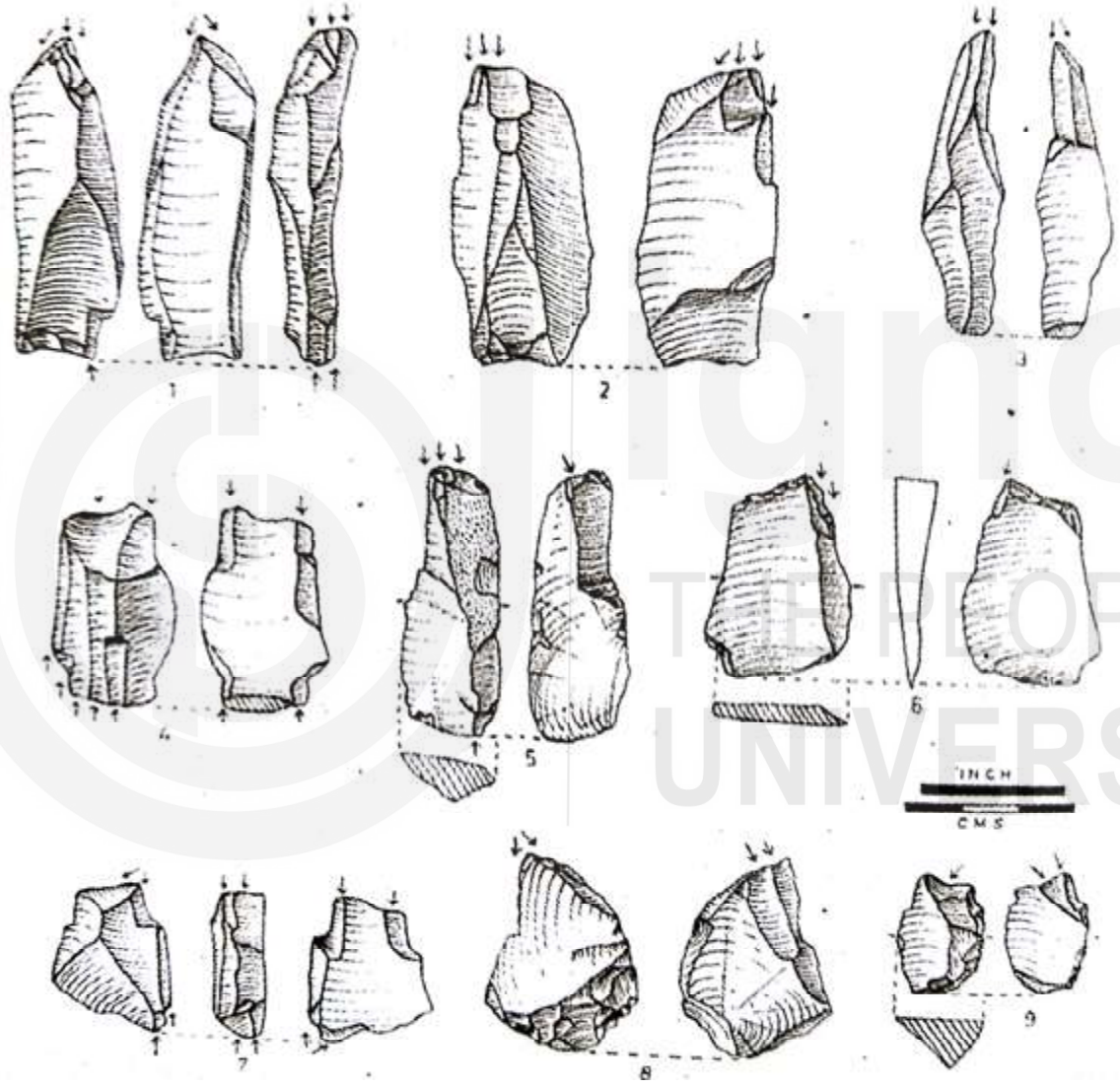

चित्र 2.10: रेनीगुंटा के निकट रल्लाकलावा से प्राप्त ब्लेड-और-तक्षणी उद्योग के पुरावशेष. 1-9 तक्षणी के विभिन्न प्रकार (मूर्थी, 1979)। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-3।

हड्डी उपकरण (Bone Tool) उद्योग

उच्च पुरापाषाण काल के हड्डी उपकरण आंध्र प्रदेश के कूर्नूल गुफा स्थलों से प्राप्त होते हैं। रॉबर्ट ब्रूस फुट और उनके पुत्र हेनरी ब्रूस फुट ने 1880 में बिल्लासुरगम गुफाओं की खुदाई से उत्तरवर्ती प्रातिनूतन काल के पशुओं की हड्डियों से बने उपकरण प्राप्त किए। इन उपकरणों में नुकीले तीर, खंजर, खुरचने वाला चाकू, छेनी, कील, कुल्हाड़ी इत्यादि शामिल थे। 1970 में की गई खुदाई से यह बात पुनः पुष्ट होती है। गुफाओं के इन हड्डी

से बने उपकरणों से उनकी अपरिपक्व तकनीक का पता चलता है। ऐसा इसलिए था क्योंकि गुफाएँ अल्पकालीन आश्रय होती थीं, अतः अल्पकालीन आश्रय की स्थिति में पूरी तरह तैयार पुरावशेषों की संपूर्ण प्रस्तुति संभव नहीं होती। मुच्छातला चिंतामनु गवि गुफा (एम.सी.जी.-I और एम.सी.जी.-II) में अधिक खुदाई से उत्तरवर्ती प्रातिनूतन के समय के पशुओं की हड्डियों से बने उपकरणों के साथ-साथ ब्लेडनुमा उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। इस गुफा के हड्डी उपकरणों में खुरचनियाँ, छेदक, छेनियाँ, करछे (Scoops), डोल, कंधे/कंधेदार वाली खंती, सूआ, कंटिया इत्यादि औज़ार शामिल हैं (चित्र 2.11)।

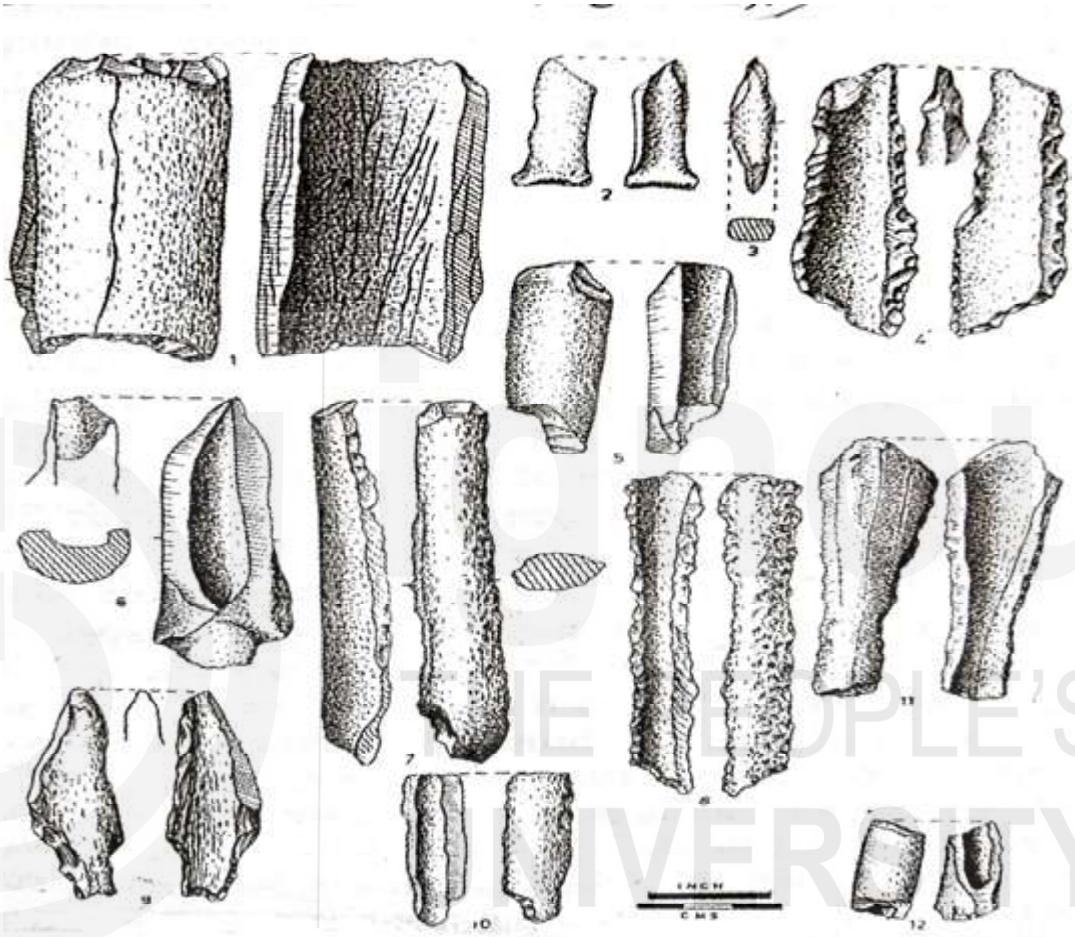

चित्र 2.11: मुच्छातला चिंतामनु गवि गुफा 1 (एम.सी.जी.-I) से प्राप्त हड्डी से बने उपकरण (कूर्नूल गुफाएँ). 1. विदारक; 2-3) छेदक 4-6) छेनी; 7-8) स्पैटुला; 9) घुमावदार चाकू; 10) चौड़ा चाकू, टूटा हुआ; 11) अस्थि ब्लैन्क 12) दोधारी अस्थि चाकू (मूर्थी, 1979)। स्रोत : एम. ए.एन.-002, खंड 5, इकाई-3।

2.10 मध्य पाषाण कालीन संस्कृति

मध्यपाषाण काल की शुरुआत 8000 बी.सी.ई. में शुरू हुई। यह पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच का संक्रमण काल था। इस समय तापमान अधिक था और जलवायु आर्द्र एवं शुष्क थी। ऐसी जलवायु ने मानव जीवन को प्रभावित किया तथा वनस्पति एवं जीव जंतुओं में परिवर्तन हुआ। गर्म जलवायु होलोसीन (Holocene) युग से संबंधित थी। प्रातिनूतन युग के बाद होलोसीन काल आया। होलोसीन को नव या नवतापीय चरण के रूप में भी जाना जाता है। हम इसी युग में रह रहे हैं। होलोसीन काल की शुरुआत 10,000 बी.सी.ई. में हुई।

भूवैज्ञानिक युग

वर्तमान में, भूवैज्ञानिकों ने जीवन के प्रकारों के विकास के अनुरूप पृथ्वी के इतिहास को चार युगों में विभाजित किया है :

i) प्राथमिक (पुराजीवी)

ii) माध्यमिक (मध्यजीवी)

iii) तृतीयक, तथा

iv) चर्तुभागीय

तृतीयक तथा चतुर्थ भाग मिलकर सेनोज़ोइक (Cenezoic) काल अर्थात् स्तनधारियों के युग का निर्माण करते हैं जिसकी शुरुआत 10 करोड़ वर्ष पहले हुआ थी। सेनोजोइक युग का विभाजन सात युगों में होता है जिसके दो अंतिम युग थे– प्रातिनूतन और होलोसीन – जो मानव विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण हैं। प्रातिनूतन काल लगभग 16 लाख वर्ष पूर्व शुरू हुआ और होलोसीन (या नव युग जिसमें हम रहते हैं) लगभग 10,000 साल पहले शुरू हुआ।

स्रोत : उपिंदर सिंह, 2008, पृष्ठ 60.

मध्य पाषाण काल के लोगों का जीवन वैसे तो पुरापाषाण काल के खानाबदोश जीवन जैसा था, परन्तु पुरापाषाण काल के लोगों की जीवन शैली की तुलना में अधिक विस्तृत था। पौधों और पशुओं के साथ उनके लंबे अनुभव तथा परस्पर क्रिया ने उन्हें प्रजाति-विशिष्ट शिकारी व संग्रहकर्ता बना दिया। अर्थात् वे कुछ पादपों और पशुओं को अन्य पादपों एवं पशुओं की तुलना में अधिक तवज्जो देते थे। उत्तर प्रातिनूतन युग के दौरान प्रारंभिक होलोसीन काल में यूरोप में उत्पन्न हुई संस्कृति, को मध्य पाषाण काल की संस्कृति कहते हैं।

शब्दावालियाँ

भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के संस्थापक-महानिदेशक सर अलेक्ज़ेडर कनिंघम के सहायक ए.सी. कार्लाइल ने पूर्वी भारत के विंध्य पहाड़ी क्षेत्रों के शैलाश्रयों एवं गुफाओं से बड़ी संख्या में छोटे-छोटे पत्थरों के औज़ारों का पता लगाया। इस संग्रह में अर्द्धचन्द्राकार, विषम चतुर्भुजाकार, त्रिकोणीय तथा मुलायम लघु चाकुओं (knife-lets) जैसे पत्थर के छोटे उपकरण शामिल थे। कोई भी औज़ार 1.6 से.मी. से अधिक लंबा नहीं था। ये उपकरण पूरी तरह से तैयार नहीं थे। कार्लाइल ने पर्याप्त स्तरीकृत सबूत दिए जिससे पता चलता है कि ये औज़ार पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच के समय के हैं। इनकी संस्कृति दोनों युगों से मिलती जुलती थी। कार्लाइल ने इसे मध्य पाषाण काल का मध्यवर्ती काल बताया।

परंपरागत तौर पर, प्रातिनूतन युग को 10,000 बी.सी.ई. के आस पास निर्धारित किया जाता है। यूरोप में मध्यपाषाण काल का निर्धारण लगभग 9,500 बी.सी.ई. में किया गया है। मध्य पाषाण काल का अंत कृषि की शुरुआत के साथ लगभग 6000 से 5000 बी.सी.ई. में बताया गया है (प्राइस, 1991)।

उपकरणों के प्रकार तथा प्रौद्योगिकी

इस सांस्कृतिक चरण के सबसे आम और प्रमुख उपकरण सूक्ष्म उपकरण (Microliths) हैं। प्रौद्योगिकी के लिहाज से, यह परंपरा पुरापाषाण काल से निरंतर चली आ रही थी। ये सूक्ष्म

उपकरण पुरापाषाण काल के अंतिम चरण से बनना शुरू हुए जो मध्य पाषाण काल में प्रमुख हो गए। सूक्ष्म उपकरण निर्धारित करने के लिए उपकरण की लंबाई की सीमा तीन से.मी. मानी जाती है। इसके अलावा, मध्य पाषाण काल के सूक्ष्म उपकरण इस काल के तकनीकी रूप से समृद्ध लोगों द्वारा बनाए जाते थे। यह मुख्यतः औज़ार के किनारे को परिष्कृत (retouching) करके या मूठ को जोड़ने वाले किनारे (hafling edge) को मुथरा (blunting) करने से परिलक्षित होता है। इसमें इस्तेमाल की गयी तकनीक में ठोकना (punch) और दबाव देना होता था, जो पुरापाषाण काल में विकसित हुई। इस कारण, सूक्ष्म उपकरणों की पहचान मुख्यतः उनकी खोज और तिथि निर्धारण के संदर्भ पर निर्भर करती है।

सूक्ष्म उपकरणों को ज्यामितीय और गैर–ज्यामितीय आकारों के संदर्भ में वार्णित किया जाता है। ज्यामितीय प्रकारों में समलंबी, त्रिकोण, चन्द्राकार इत्यादि आते हैं। गैर-ज्यामितीय प्रकारों में मुट्ठे या पीठ को कुंद करना (blunting), आंशिक, पूर्णतः या समग्र रूप से खुरचनी, छेदक, खंती, चाकू, तक्षणी इत्यादि को कुद/मुथरा करना शामिल है (चित्र 2.12)।

सूक्ष्म उपकरणों का प्रयोग पौधों को काटने, संग्रह करने, छाँटने, उनके रेशों को बीनने; जाल बनाने; पत्थरों को तोड़ने; धनुष को बनाने इत्यादि में समग्र उपकरणों के रूप में होता था। इन उपकरणों में लकड़ी, हड्डी और बारह सिंगे के शाखादार सींग इत्यादि इस्तेमाल होते थे। इनका प्रयोग किसी चीज़ को सीधे-सीधे काटने में होता था। इनका प्रयोग अक्सर तिरछे ब्लेडों, छोटे ब्लेडों, चौड़े, समलंबी, घुमावदार एवं रेतीदार ब्लेडों के निर्माण में भी होता था। कभी-कभी चन्द्राकार और त्रिकोणीय उपकरणों को उर्ध्वाधर रखकर आरी की धार को तैयार किया जाता था। ऐसे जटिल उपकरणों को बनाने की प्रक्रिया उच्च पुरापाषाण काल से मध्य पाषाण काल तक जारी रही।

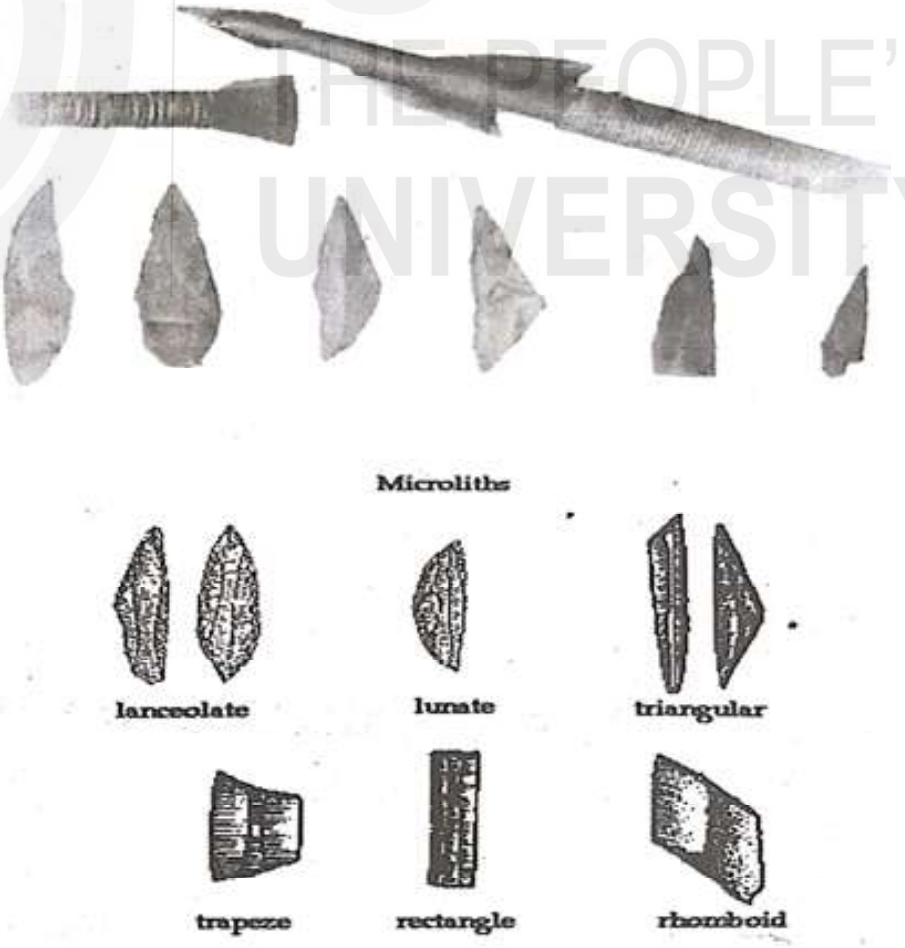

चित्र 2.12: सूक्ष्म उपकरण (Microliths) स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-6, इकाई-1।

सूक्ष्म उपकरण तकनीक से छोटे-छोटे एवं बड़े-बड़े पत्थर से औज़ार का निर्माण किया जाता रहा। सूक्ष्म उपकरणों को आसानी से एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाना आसान था। मध्यपाषाण काल के लोग एक जगह पर लंबे समय तक रहते थे। इस प्रकार, उन्होंने बहुत तीक्ष्ण एवं मजबूत सामग्री जैसे चकमक पत्थर/अग्नि पत्थर, सिक्थ स्फटिक, गोमेद, इंद्रगोप इत्यादि जो प्रकृति में छोटे पिंडों के रूप में पाए जाते थे, से औज़ारों को निर्मित करना सीखा।

मध्य पाषाण काल के लोगों द्वारा उपयोग किए जाने वाले एक अन्य प्रकार के उपकरणों को बृहत् उपकरण (चित्र 2.13) कहा जाता है। ये सूक्ष्म उपकरणों से बड़े होते थे।

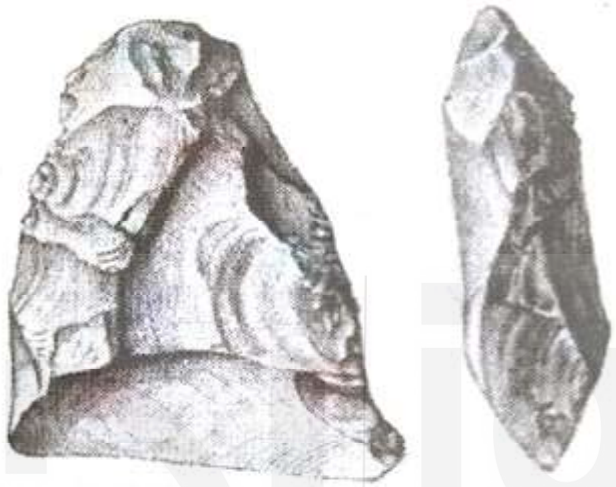

चित्र 2.13: वृहत् उपकरण। स्रोत : एम.ए.एन.-002, खंड-6, इकाई-1।

ये उच्च पुरापाषाण काल के उपकरणों जैसे खुरचनियों की निरंतरता को दर्शाते हैं। साथ-साथ नए प्रकार के औज़ार जैसे कुल्हाड़ियाँ और कुदालियाँ भी इस्तेमाल होने लगे। इन्हें

चित्र 2.14: हड्डी से बने मछली पकड़ने वाले कांटे, सुइयाँ और मछली पकड़ने के लिए जाल बनाने वाली ढरकियाँ (सर्जियेवो-पोसाडिसकी जिला)। मध्यपाषाण काल। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Fishing_tools_stone_age_SPMZ.jpg).

भारी उपकरण माना जाता है। वे मुख्यतः चकमक पत्थर जैसे पत्थरों के बने होते थे। औज़ारों को परतें उतार कर तैयार किया जाता था जिसमें उनकी कार्यरत धार (working edge) को आड़ा (traverse) बनाया जाता था। कामकाजी किनारे की प्रकृति के अनुसार उन्हें कुल्हाड़ी (adze) कहा जाता है। वे लकड़ी पर काम करने के लिए प्रयुक्त होते थे। कुल्हाड़ी, बसूले या कुदाली को लकड़ी, हड्डी या बारहसिंगे के शाखादार सींग से जोड़कर बनाया जाता था। इन उपकरणों से जंगलों के वातावरण से निपटने में सहायता मिलती थी।

हड्डी (चित्र 2.14) या बारहसिंगों के शाखादार सींग से बने उपकरण एक और श्रेणी के उपकरण हैं जिनका प्रयोग मध्यपाषाण काल के लोगों द्वारा किया जाता था। हड्डी का इस्तेमाल मुख्य रूप से कांटेदार बर्छियाँ (harpoons) बनाने के लिए किया जाता था। कंटियाओं (barbs) की संख्या, मूठ (shaft) के बराबर में उनकी अविस्थिति तथा उनकी प्रकृति व आकार के आधार पर बर्छियों में विभिन्न प्रकार पहचाने जाते हैं। उनका प्रयोग मछली पकड़ने के कांटों और अंकों के रूप में किया जाता था। समग्र उपकरण बनाने के लिए हड्डियों का प्रयोग दस्तों (hafts) के रूप में भी होता था।

अधिकांशतः बारहसिंगों के कटे हुए सिंग का इस्तेमाल उपकरण बनाने में होता था। सिंग को भौंहों के पास से काटा जाता था जिसका प्रयोग कुल्हाड़ी या बसूला बनाने में किया जाता था। कभी-कभी बारसिंगे के शाखादार सींग को कुल्हाड़ियों व बसूलों के मूठ के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

भारतीय मध्य पाषाण काल की संस्कृति

मध्यपाषाण काल या मध्य पत्थर युग (Middle Stone Age) पुरापाषाण की तुलना में कहीं अल्प अवधि के लिए था। यह श्रीलंका एवं अफ्रीका के कुछ हिस्सों में 30,000 वर्षों से लेकर भारत और पश्चिम एशिया में 10,000 वर्षों तक चला। सूक्ष्म उपकरणों के प्रयोग के अलावा, मध्य पाषाणकाल के लोगों ने शिकार करने के लिए तीर, धनुष, वनस्पति खाद्य पदार्थों जैसे जड़ व कंद को अनेक प्रकार विकसित किए। उन्होंने हजारों चित्र बनाए जिससे उनके सौंदर्यबोध का आभास होता है। साथ ही, यह भी पता चलता है कि कैसे उन्होंने अपने जीवन निर्वाह के लिए तकनीकी उपकरणों, जीवन निर्वाह आधारित अर्थव्यवस्था (subsistence economy) के तरीकों, संस्कृति की भौतिक सामग्रियों, सामाजिक संगठन एवं धर्म का विकास किया।

भारतीय मध्य पाषाण काल के स्थान/मध्य पाषाणकालीन स्थान

सूक्ष्म उपकरण और अन्य मध्यपाषाण कालीन उपकरणों की सबसे प्राचीन खोज ए.सी.एल. कार्लाइल द्वारा की गई थी। उन्होंने उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के शलाश्रायों में सूक्ष्म उपकरण, शिलाचित्र, पीसने के निशान युक्त वर्णक टुकड़े (pigment pieces) मानव कंकाल, पशु हड्डियों, राख, कोयले के टुकड़े मिले। उन्होंने भाला, तीर, धनुष और कटार से जंगली पशुओं का शिकार करते दिखाते चित्रों की भी खोज की। मध्य पाषाणकालीन जीवन को दर्शाती कला की यह पहली खोज थी। फलतः आगे चलकर उत्तर प्रदेश, आंध्रप्रदेश में कर्नूल गुफाओं और दक्षिण भारत और गुजरात के बड़े स्थलों पर शोध किये गए। मध्य पाषाणकालीन स्थल उत्तर-पूर्व को छोड़कर लगभग पूरे भारत में पाए जाते हैं (मानचित्र 2.4)। यहाँ तक कि ये गंगा के मैदानी इलाकों, जहाँ पत्थर के संसाधन कम हैं, में भी पाए जाते हैं। यह दर्शाता है कि मध्य पाषाणकालीन खानाबदोशों ने पूरे उपमहाद्वीप में अपना विस्तार किया। प्राक्-इतिहास के पूरे 20 लाख वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ था।

भारत के प्रमुख उत्खनन स्थल :

- राजस्थान में गणेश्वर, बागोर, तिलवारा।
- गुजरात में लंघनाज, अखज (Akhaj), वलासना, हिरपुरा, अमरापुर, देवनिमोरी, ढेकवाडलो (Dhekvadlo), तरसंग।
- महाराष्ट्र में पटने (Patne), पचाड़ हाटखंबा।
- उत्तरप्रदेश में मोरखाना, लेखाहिया (Lekhahia), बाघाई, खोर (baghai Khar), सराई नाहर राय, महादहा, दमादमा, चोपनी मंडो, बैधा पुतपुरीहवा।
- मध्यप्रदेश में पंचमढ़ी, आदमगढ़, पुतलीकरार, भीमबेटका, बाघोर II, बाघोर III, घांघरिया।
- बिहार में पैसरा

मानचित्र 2.4: भारतीय मध्य पाषाणकालीन स्थल (वी. एन. मिश्रा, 1989)। स्रोतः एम.एच.आई.-08, खंड-2, इकाई-5।

- उडीशा मे कुचाई
- पश्चिम बंगाल में बीरभनपुर
- आंध्र प्रदेश में मुच्छातला चिंतामनु गवि, गोरी गुंडम
- कर्नाटक में संगनाकल्लु
- केरल में तेनमालई

हमारे, सराय नहर राय, महादहा और आदमगढ़ जैसे स्थल प्राचीन निर्धारण एवं भौतिक संस्कृति के कारण वास्तव में मध्य पाषाणकालीन स्थल हैं।

उपर्युक्त उत्खनन स्थलों से हमें प्रौद्योगिकी, भौतिक अवशेष, दफनाने की व्यवस्था, शारीरिक अवशेष, दफन से संबंधित प्रथाओं, कला एवं चारकोल की भरपूर जानकारी मिलती है।

हमारे पास लगभग बीस स्थानों से साठ के आसपास रेडियो कार्बन एवं थर्मोल्युमिनिसेंस निर्धारण से प्राप्त तिथियां उपलब्ध है। इनसे यह ज्ञात होता है कि मध्य पाषाणकालीन लोग 10,000 बी.सी.ई से 2000 बी.सी.ई. के बीच के समय के दौरान रहते थे। उनके उत्तरवर्ती इतिहास में वे अनेक ग्रामीण एवं शहरी संस्कृतियों के संपर्क में आए। इस संपर्क के परिणास्वरूप, उनके खानाबदोश शैली वाले जीवन में अभूतपूर्व बदलाव आया। अधिकांशतः खाना-बदोश बस गए, कृषि के साथ-साथ अन्य स्थानबद्ध व्यवसायों को अपनाया और धीरे-धीरे हिंदू जाति व्यवस्था पर आधारित समाज में आत्मसात हो गए।

बोध प्रश्न 2

1) भारत के उच्च पुरापाषाण कालीन दो स्थानों का नाम बताएँ? किसी एक का सविस्तार वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सूक्ष्म उपकरण (Microliths) क्या होते हैं? कुछ उदाहरण दें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.11 सारांश

भारतीय पुरापाषाण काल तीन चरणों में बँटा हुआ है जो तकनीक और विभिन्न उपकरणों के विकास को दर्शाते हैं : निम्न पुरापाषाण काल, मध्य पुरापाषाण काल और उच्च पुरापाषाण काल। निम्न पुरापाषाण कालीन सांस्कृतिक परंपरा की विशेषता हस्त-कुल्हाड़ी और चिकने पत्थर के बने काटने वाले औज़ार (pebble chopper chopping tools) हैं। उपकरणों के निर्माण के लिए नदियों से प्राप्त पत्थरों के साथ-साथ चूना पत्थर, डोलराइट

और अबरक भी अधिक उपयुक्त पत्थर थ। पत्थर के हथौड़ों, नरम हथौड़ों तथा तैयार किए गए मूल-पत्थर (Core) की तकनीकों का इस्तेमाल शल्कों को अलग करने एवं उपकरणों का स्वरूप देने में होता था। मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृति में विशेष तकनीक से तैयार किये गए विभिन्न प्रकार के शल्कों पर बने उपकरण मिलते हैं। इनमें मुस्टेरियन और लेवालोय (Levallois) तकनीके सामान्य थी। उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति ब्लेड-उपकरण तकनीक पर आधारित है। इसके अलावा, आंध्र प्रदेश की कर्नूल गुफाओं से हड्डियों से निर्मित औज़ार भी मिलते हैं। मध्य पाषाण कालीन संस्कृति 10000 बी.सी.ई. के आसपास शुरू हुई जिसे उत्तर प्रातिनूतन संस्कृति भी कहा जाता है। यह पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच की कड़ी है। सूक्ष्म उपकरण (Microliths) इसकी मुख्य विशेषता है जो सिलिका की सामग्री से विकसित तकनीक द्वारा बने लघु समग्र पाषाण औज़ार हैं।

2.12 शब्दावली

पुरातत्व विज्ञान : अतीत को समझने के लिए भौतिक अवशेषों का अध्ययन।

पुरावशेष (Artifact) : मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तु, उपकरण आदि जिसका ऐतिहासिक/पुरातात्विक महत्व है।

जमावड़ा (Assemblage) : पुरातात्विक स्थलों के संदर्भ में एक संस्कृति या समयावधि से संबंधित पाए जाने वाले पुरावशेषों का संयोजन।

कार्बन 14 डेटिंग : इसे रेडियोकार्बन तिथि निर्धारण तकनीक भी कहते हैं। यह एक संपूर्ण प्रक्रिया है जिसमें किसी पदार्थ के भीतर मौजूद रेडियोसक्रियता (Radioactivity) की जाँच की जाती है।

होमिनिड (Hominid) : मनुष्य के आधुनिक और प्राचीन रूपों का परिवार।

स्थल (Site) : एक ऐसा स्थान जहाँ अतीत में हुई मानव गतिविधियों का साक्ष्य हो।

स्तरीकरण (Stratigraphy): अतीत में किसी स्थल पर की गई प्राचीन सांस्कृतिक गतिविधियों की एक श्रृंखला। यह एक-दूसरे पर चढ़ी हुई सतहों/परतों के रूप में जानी जाती है।

ताप संदीप्ति काल-निर्धारण पद्धति : निरपेक्ष तिथि-निर्धारण विधि जो किसी पदार्थ, आमतौर पर गर्म किए गए मिट्टी के बर्तनों द्वारा उत्सर्जित ताप संदीप्ति (Thermoluminiscence) की मात्रा को मापती है।

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन पाषाण युग या पुरापाषाण काल, मध्य पाषाण युग, नवीन पाषाण युग या नवपाषाण काल। देखें भाग 2.2 और 2.3।

2) सोहनियन और अशूलियन। विस्तार के लिए देखें भाग 2.7।

3) राजस्थान में दिदवाना और बुद्ध पुष्कर। विस्तार के लिए देखें भाग 2.8।

बोध प्रश्न - 2

1) आंध्र प्रदेश में रेनीगुंटा एवं कर्नूल। विस्तार के लिए देखें उपभाग 2.9.1।

2) सूक्ष्म उपकरण (Microliths) अर्द्धचन्द्राकार, समलंब चर्तुभुजाकार, त्रिकोणीय, मुलायम चाकूनुमा इत्यादि आकार के छोटे पत्थरों के उपकरण होते हैं जिनकी लंबाई तीन से. मी. से कम होती है। ये मुख्यतः मध्य पाषाणकालीन संस्कृति से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, ''उपकरणों के प्रकार एवं प्रौद्योगिकी'' शीर्षक के अंतर्गत देखें।

2.14 संदर्भ ग्रंथ

ऑल्चिन, बी. और ऑल्चिन, एफ़. आर. (1982). *द राइज़ ऑफ सिविलाइज़ेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान.* केम्ब्रिजः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

मिश्रा, वी. एन. (1989). स्टोन एज इंडियाः एन इकोलौजिकल पर्सपैक्टिव. *मैन एण्ड इनवाइरनमेंट,* खंड 14, पृ. सं. 17-64।

पदैय्या, के. (1978) न्यू रिसर्च डिज़ाइन्स एंड फ़ील्ड टेकनीक्स इन द पैलियोलिथिक आर्कियोलॉजी ऑफ इंडिया. *वर्ल्ड आर्कियोलोजी.* खंड 10, पृ. सं. 94-110।

सांकलिया, एच. डी. (1964). *स्टोन एज टूल्सः देयर टेकनीक्स, नेम्स एंड प्रोबेबल फ़क्शन्स.* पुणेः डेक्कन कॉलेज।

सांकलिया, एच. डी. (1974) *प्रीहिस्ट्री एंड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एंड पाकिस्तान.* पुणेः डेक्कन कॉलेज।

इकाई 3 शिकारी-संग्रहकर्ता समाज*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पुरापाषाण काल की जीवन शैली एवं अधिवास स्वरूप

- 3.2.1 शिकार एवं भोजन की तलाश
- 3.2.2 गैर-उपयोगितावादी व्यवहार
- 3.2.3 पुरापाषाण कालीन पाषाण कला और प्रथाएँ

3.3 मध्य पाषाण काल

- 3.3.1 पाषाण कला के स्थल
- 3.3.2 स्थल-विशेष अध्ययन – भीमबेटका
- 3.3.3 उत्खनन
- 3.3.4 पाषाण चित्रकला
- 3.3.5 इन चित्रों का निर्माण क्यों किया गया?
- 3.3.6 भीमबेटका पाषाण कला समूह परिसर का वर्गीकरण

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आप निम्न बातों को सीखेंगे :

- प्रागैतिहासिक जीवन शैली, बस्तियों का स्वरूप, उपकरण;
- पुरापाषाण कालीन लोगों के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उपलब्ध पुरातात्त्विक और कला साक्ष्यों के प्रकार;
- उच्च पुरापाषाण कालीन कला एवं मध्य पाषाण कालीन कला; और
- भारत के पुरापाषाण कालीन और मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियों की क्षेत्रिय विविधता।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य उपकरण बनाने की अपनी क्षमता के कारण अन्य पशुओं से श्रेष्ठ दर्जा प्राप्त कर लेता है। मनुष्य पत्थर, लकड़ी, हड्डियों व सींग के बने औजार से शिकार कर अपना भरण-पोषण करता है। औजार निर्माण की इसी क्षमता से संस्कृति का पोषण होता है। वह घर बनाना, आग का प्रयोग, कपड़े पहनना, एवं अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए प्रतीकों एवं चिन्हों के साथ-साथ भाषा का भी आविष्कार करता है, यद्यपि लिपि का नहीं। मनुष्य के इतिहास के इस अवधि को प्रागैतिहासिक काल कहते हैं। साथ ही, मनुष्य की जीवनशैली

*यह इकाई एम.ए.एन. (MAN)-002, खंड 5 और 6 से ली गयी है।

के पुनर्निर्माण करने वाले साक्ष्य औजार ही हैं जो मुख्यतः पत्थरों से बने होते हैं जो इतने समय बाद में भी उपलब्ध हैं। कृषि और धातु की खोज से पहले, मानव विकास की लंबी अवधि को पुरापाषाण काल और मध्य पाषाण काल की संस्कृति कहते हैं। दोनों शिकारी एवं भोजन संग्रहण की संस्कृतियों को दर्शाते हैं। इन संस्कृतियों के बीच के अंतरों की पहचान औजारों से की जाती है, जिसे उद्योग कहते हैं।

इस इकाई में, हम भारतीय प्रायद्वीप के पुरातात्विक स्थल, बस्ती के प्रकार, कला साक्ष्य, औजार एवं उपकरण के माध्यम से पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल के लोगों के जीवन निर्वाह की संस्कृतियों का अध्ययन करेंगे।

3.2 पुरापाषाण काल की जीवन शैली एवं अधिवास स्वरूप

पुरापाषाण संस्कृति का विकास भूवैज्ञानिक युग में हुआ जिसे प्रातिनूतन युग (Pleistocene period) कहा गया। जलवायु को देखते हुए प्रातिनूतन युग की विशेषता हिमरूप (अत्यधिक ठंठी तथा व्यापक बर्फ का आवरण) तथा अंतर हिमनदों (गर्म काल) को बताया गया है। यह अवस्था समशीतोष्ण क्षेत्र में तथा वर्षा संबंधी (अत्यधिक वर्षा या नमी वाली अवधि) और अंतर वर्षा संबंधी (सूखा काल) की अवस्था ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र में रही। शुरुआती मानव जनसंख्या (पुरापाषाण) अधिकतर शीतोष्ण क्षेत्रों (यूरोप) और ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों (अफ्रीका और एशिया) में जलवायु घटनाओं एवं परिवर्तन को सफलतापूर्वक अपनाकर रहते थे।

पुरापाषाण काल के तथ्य दर्शाते हैं कि लोग पानी के स्रोतों, पहाड़ों एवं खाद्य पदार्थ उपलब्ध होने योग्य इलाकों में रहते थे। ये छोटे-छोटे शिकारी एवं संग्रह करने वाले समुदाय थे जो अपने जीविकोपार्जन के लिए पशुओं एवं पौधों पर निर्भर थे। पत्थरों के बने औजार इनके रोजमर्रा के महत्वपूर्ण अंग थे। इनका इस्तेमाल ये काटने, छोटे-छोटे टुकड़े करने, खुरचने, छेद करने, पतले टुकड़े करने, छीलने इत्यादि व तक्षण के लिए करते थे। कुछ कार्य जीवन यापन से तथा कुछ शिल्प से जुड़े हुए थे। इन उपकरणों के माइक्रोवियर (सूक्ष्म परिक्षण) विश्लेषण से पता चलता है कि इनके उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता था। उदाहरण के लिए, उनवीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) से इन उपकरणों के किनारों पर घिसने और टूटने के निशान मिले हैं, जिससे वैज्ञानिक स्पष्ट रूप से बताते हैं कि इनका प्रयोग वनस्पति, गैर-वनस्पति पदार्थ, लकड़ी या बाँस पर हुआ है। कुछ औजारों पर घिसने के निशान मिलते हैं जिससे पता चलता है कि उनको मूठ में लगाने में इस्तेमाल किया गया था।

पुरापाषाण काल के शिकारियों ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न पर्यावरणीय स्थलों पर कब्जा कर लिया एवं उसके अनुकूल ढल गए। पुरापाषाण काल के लोग मध्यप्रदेश के भीमबेटका में, संघाव की गुफाओ में (उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान) या आंध्र प्रदेश के कर्नूल के शैल आश्रयों में रहते थे। उन्होंने खुले में, शाखाओं के बने आश्रयों में, घास, पत्ते या बेंत से निर्मित अस्थायी घरों में अपना डेरा डाला। इनका साक्ष्य पर्याप्त मात्रा में नहीं मिला है क्योंकि पत्तों के बने घर ज्यादा दिन तक टिक नहीं पाए। हालांकि, पत्थरों से निर्मित औजार के साक्ष्य बस्तियों की पुष्टि करते हैं। जे. एन. पाल तथा वी. डी. मिश्रा के नेतृत्व में एक टीम ने पहाड़ियों के ढलान पर तथा पथरीली चट्टानी सतहों पर जो कैमूर नदी क्षेत्र के बाहरी किनारे और जो बेलन नदी के समीप था, 17 एशूलियन स्थल खोजे है। इस क्षेत्र में अबरक पत्थर आसानी से उपलब्ध था तथा कार्यशाला स्थल भी थे। सामान्य रूप से उपलब्ध चट्टानों का उपयोग औजार बनाने में किया जाता था। यह स्थान मानवनुमा (hominin) समूहों के लिए उपयुक्त था जहाँ से शिकार पर नज़र रखना सहज था।

अधिकतर स्थल पानी के स्रोतों के नजदीक थे। 1970 के दशकों से लेकर आज तक, प्रो. के. पदैय्या के शोध से उत्तरी कर्नाटक में हुंस्गी तथा बैचबल घाटी में 400 पुरापाषाण काल के स्थलों का पता चला है। एशूलियन स्थल का उत्खनन हुंस्गी में हुआ जो एक अनावृत स्थल है। ग्रेनाइट के शिलाखंडों से घिरा अंडाकार आकार का खुला स्थान मनुष्यों द्वारा उनकी गतिविधियों के लिए चुना गया। प्रो. पदैय्या ने निष्कर्ष निकाला है कि पहले से ही शिलाखंडों का प्रयोग हवा से बचने के लिए होता आया है तथा इससे कृत्रिम आश्रयों को बनाना आसान था। जलस्रोत के किनारे पड़ाव सुनिश्चित था क्योंकि नदी में बारहमासी बहाव बना हुआ था। देवपुर धारा के तल में सोते पहले भी सक्रिय रहे होंगे। घाटी में जल बहाव पूरी तरह से संगठित नहीं था और हुंस्गी नदी में ही कई उथली व लटे रूपी धाराएं थी जो बहुत उच्च स्तर पर बह रही थी। पठार की तरह घाटी भी कांटों व झाड़ियों की घनी जंगल की वनस्पति से ढँकी हुयी थी; इस तरह की वनस्पति लोगों को शिकार और संग्रहण जैसे उद्यमों में सहूलियत प्रदान करती होगी। अभी तक, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला है जिससे यह पता चले कि एशूलियन काल में प्राकृतिक भोजन की सुविधाओं की उपलब्धता क्या थी। बाद के आंकड़ों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में जंगली पौधों एवं शिकारयुक्त पशु मानव उपभोग के लिए मिलते थे। इसके अलावा, इस घाटी में चूना पत्थर संकोणाश्म (breccia) और बजरी जमाव भारी मात्रा में पाए जाते थे जिसका इस्तेमाल कच्चे माल के रूप में होता था। इसलिए, हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इस घाटी ने एशूलियन झुंडों के लिए काफ़ी उपयुक्त आवास स्थल का गठन किया।

> पुरातत्व स्थलों के प्रकार : साधारणतः, स्थल आम लोगों की क्रियाकलापों को प्रस्तुत करते हैं। आवासीय स्थानों पर, लोग खाना बनाते, रहते और अपना समय चित्रकारी तथा उत्कीर्णन जैसे कामों में बिताते थे। उदाहरण के लिए, हुंस्गी और भीमबेटका जैसे लंबी अवधि के स्थलों की अपेक्षा अस्थायी शिविर स्थल थे। उत्तरवर्ती श्रेणियों ऐसे स्थलों को दर्शाती है जिसे साल में एक बार अपने अधिकार में लिया जाता था, और उसके बाद लोग पलायन कर जाते थे। विशिष्ट कार्य स्थल भी मिलते है, जैसे कसाई खाना स्थल – यहाँ पशुओं से माँस तथा चमड़ों को निकालने का काम किया जाता था। इसी तरह, उद्योग स्थल वैसे स्थान थे जहाँ चकमक पत्थरों से औजार बनाए जाते थे।

प्राचीन समाजों का संगठन लोगों के दल के रूप में होता था। ये 100 से कम लोगों का एक छोटा दल हुआ करता था, जो शिकार तथा भोजन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान का भर्मण करते थे। लगातार घूमने के कारण समूह का आकार छोटा रहता था, क्योंकि बच्चे स्थान परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करते थे। इस प्रकार, आवश्यकतानुसार, उनके आकार छोटे ही रह गये।

ऐसी सामान्य धारणा है कि शिकारी एवं भोजन संग्रहण वाले लोग खाने के मोहताज होते थे, जिनके पास अवकाश के लिए कोई वक्त नहीं होता था। यह धारणा गलत है। पुरापाषाण कालीन शिकारी और संग्रह करने वाले लोग एक सीमा से अधिक भोजन जमा नहीं करते थे क्योंकि उनके पास भोजन को सुरक्षित रखने के लिए कोई तकनीक नहीं थी और उनकी भौतिक लालसा व उनकी ज़रूरतें सीमित थी। यह स्पष्ट है कि ज्योंही उनके लिए पर्याप्त भोजन का इंतजाम हो जाता उनके जीवन निर्वाह संबंधी गतिविधियों वहीं रूक जाती और उनके सोने, खेलने, बात करने, चित्रकारी एवं आराम करने के लिए पर्याप्त समय होता था।

प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण इस्तेमाल ने शिकार एवं संग्रहण को जीवन निर्वाह का एक सक्षम साधन बना दिया। यही कारण है कि, कुछ आधुनिक समुदायों में भी, शिकार और

संग्रहण एक प्रमुख साधन है, भले ही छोटे पैमाने पर ही क्यों न हो। आधुनिक शिकारी एवं संग्रहकर्ता पर नृवैज्ञानिक अध्ययन दर्शाता है कि ऐसे लोगों की भोजन संबंधी आवश्यकताओं में संग्रह की गतिविधियों का ज्यादा योगदान होता है। साधारणतः महिलाएँ संग्रह करती हैं, और पुरुष शिकार। यदि पुरापाषाण काल में भी ऐसा ही था, तो उस समय के लोगों के जीवन-निर्वहन में महिलाओं ने अहम् भूमिका निभाई होगी।

3.2.1 शिकार और भोजन की तलाश

संपूर्ण पुरापाषाण युग साधारण आर्थिक संगठन द्वारा संचालित था जिसमें जंगली पौधों का संग्रहण और जंगली जानवरों का शिकार शामिल था। व्यापक रूप से स्वीकृत तर्क के आधार पर, भारत के विभिन्न पारिस्थितिकीय या भौगोलिक क्षेत्र प्रातिनूतन काल में मौजूद समृद्ध पशु जीवन और वनस्पति की पुष्टि करते हैं, इससे सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है कि पुरापाषाण युग के लोगों को व्यापक पैमाने पर मांसाहारी एवं शाकाहारी भोजन उपलब्ध था। इस संबंध में, पुरातात्त्विक साक्ष्य कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत करते हैं।

पिछली सदी के मध्य से, स्तनधारियों के जीवाष्म भारी मात्रा में प्राप्त किए गए हैं, जो कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा और अन्य नदियों से प्राप्त पाषाण औजारों के साथ मिले हैं। इन खोजों ने नई व्याख्या को जन्म दिया कि प्रारंभ में मनुष्यों ने जंगली पशुओं, हिरण और अन्य स्तनधारी पशुओं का उपयोग भोजन के लिए किया। इस व्यवस्था की पुष्टि तमिलनाडु में अतिरमपक्कम, महाराष्ट्र में चिरकी-नेवासा, हुंस्गी और बैचबल घाटी में हेब्बल बुजुर्ग और फतेहपुर, तेग्गीहाली, इसमपुर के प्राथमिक एशूलियन स्थानों से प्राप्त जंगली पशुओं, हिरण, जंगली घोड़े, जंगली हाथी दांत, अस्थियों के अवशेषों से होता है। इन अस्थियों पर बने निशान इस बात के सूचक हैं कि उनका प्रयोग भोजन के लिए किया गया था। ये अस्थि-अवशेष या तो शिकार किए गए पशुओं के थे या माँस भक्षी जानवरों के मारे जाने वाले स्थान से बरामद किए गए थे। आगे, इसमपुर जैसे स्थलों से प्राप्त कछुए के खोल के टुकड़े के मिलने से पता चलता है कि पाषाण युग के लोगों ने विभिन्न प्रकार के जीवों, कीड़े-मकोड़े, पक्षियों, मछलियों, चूहों, और उभयचरों का साधारण संग्रह रणनीति के अंतर्गत, शोषण किया था।

अब यह स्थापित हो चुका है कि पौधों से प्राप्त भोजन भी पाषाण युग के लोगों के आहार में शामिल था। डी. डी. कोसाम्बी ने 1965 में बताया था कि भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के लोगों ने बड़े पैमाने पर जंगली पौधों से प्राप्त भोजन जैसे फल, बीज, जामुन तथा कंद-मूलों का इस्तेमाल किया। प्रागैतिहासिक काल के विद्वानों ने भी पाषाण युग के स्थलों से प्राप्त पौधों के अवशेषों के महत्ता को समझा है। एम. डी. काजले ने श्रीलंका में स्थित बेली-लेना किटुलगला गुफा के मध्यपाषाण काल (लगभग 10,000 से 8000 बी.सी.ई.) से ब्रैड गेहूं एवं दो केलों के अवशेषों की खोज की है। इसके अलावा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के आदिवासी समूहों एवं अन्य वंचित तबकों के क्षेत्रीय-पुरातात्त्विक अध्ययनों से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ, कंद-मूल, जड़, जामुन, फल और गोंद इत्यादि का प्रयोग खाने के लिए किया गया था।

3.2.2 गैर-उपयोगितावादी व्यवहार

पुरातात्त्विक रिकॉर्ड में निम्न पुरापाषाण काल के समुदायों से संबंधित व्यवहारों के पहलुओं जैसे कि ज्ञानात्मक और कलात्मक क्षमता वाले और व्यक्तिगत अलंकरण के गैर-उपयोगी साक्ष्य मिले हैं। इससे यह भी पता चलता है कि हाथ की कुल्हाड़ी और विदारकों का निर्माण उत्क्रमण और पूरे-भाग संबंधों के विकसित संज्ञानात्मक सिद्धांतों के प्रयोग को दर्शाते हैं।

विकसित ज्ञानात्मक क्षमता भूमि इस्तेमाल के विभिन्न पहलुओं में भी दिखाई देती है। इनमें घाटियों जैसे स्थलाकृतिक स्थानों का चयन अधिवास के लिए आवास के रूप में, जल स्रोतों और खाद्य संसाधनों की मौसमी उपलब्धता की पहचान और कार्यशाला कम शिविर स्थलों के लिए उपयुक्त स्थानों के रूप में कुछ चट्टानी-क्षेत्रों की पहचान शामिल है।

एशूलियन समूह में कुछ हस्त-कुल्हाड़ी, विशेष रूप से नुकीले, डिंब और गर्भनाल आकार के बेहद महीन व पतले नमूने आकार और सौंदर्यशास्त्रीय रूप में मनभावन है। अतः, इस संभावना को खारिज नहीं किया जा सकता कि इनके निर्माताओं ने इसे काफ़ी मूल्यवान माना। मध्य भारत में भीमबेटका, डरकी चटन एवं अन्य गुफाओं से प्राप्त पत्थरों के स्लैब पर पाए जाने वाले प्यालिका नुमा गड्ढे व सरल उत्कीर्णन की व्याख्या पुरातत्वविदों ने एशूलियन समूहों की कलात्मक रचनाओं के रूप में की है।

शरीर सज्जा के भी कुछ प्रमाण मिले हैं। बैचबल एवं हुंस्गी घाटी के एशूलियन स्थलों पर कुछ लाल या गेरूए रंग के टुकड़े भी मिलते हैं। शायद, ये आस पास से ही मिले थे, जिसे शरीर को रंगने के लिए इस्तेमाल किया जाता था।

विशेष अध्ययन-हुंस्गी

के. पदैय्या द्वारा उत्तरी कर्नाटक के हुंस्गी एवं बैचबल घाटी में चार एशूलियन स्थलों की खुदाई की गई है। हुंस्गी घाटी के हुंस्गी स्थल V एवं VI पर क्षरित ग्रेनाइट पाषाण तल में 20-30 सेमी. का मोटा स्वस्थानी सांस्कृतिक स्तर संरक्षित मिलता है; यह 50 सेमी. से अधिक के तलछट निक्षेप से ढँका था। स्थानीय जलधाराओं के तल से ऊपर चट्टानी ऊँचे स्थानों पर बसेरा किया गया एवं लकड़ी के तनों एवं शाखाओं से एक अस्थायी आश्रय का निर्माण रहने के लिए किया गया। हुंस्गी स्थल VI के मुख्य गड्ढे (63मी.^{2}) में चूनापत्थर के 291 पुरावशेषों के समूह मिले हैं।

दो प्रमुख स्थल श्रेणियों – पहला हुंस्गी घाटी के नजदीक और दूसरा बैचबल घाटी में येदियापुर के नजदीक – दो या तीन किमी. में विस्तृत 15 से 20 स्थल हैं और ये दोनों श्रेणियाँ बारहमासी जलस्रोतों से जुड़ी हुयी है जो सोते की धार से निकलता है। बचे हुए स्थान पूरी घाटी के सतह के चारों तरफ़ बिखरे पड़े हैं। जल स्रोतों के साथ-साथ जंगली पौधों एवं पशुओं की मौसमी उपलब्धता (भोजन के रूप में) के साथ इनके अंतर्संबंधीय वितरण को ध्यान में रखते हुए, पदैय्या ने अनुमान लगाया कि इन क्षेत्रों में एशूलियन आवासीय व्यवस्था दो प्रमुख मौसम संबंधी प्रबंधन की रणनीतियों पर टिकी हुई थी। इनमें हैं : 1) वृहत् शिकार की संभावना और दोनों घाटियों (सोते से भरे हुए) में शुष्क मौसम में सभी एशूलियन समूहों के बारहमासी जल स्रोतों के नजदीक एकत्रीकरण, 2) घाटी सतहों के चारों ओर छोटे-छोटे समूहों में जनसंख्या का वर्षा ऋतु में बिखराव, छिछले बारिश के पानी पर निर्भरता, एवं हरी पत्तेदार, शाक-सब्जियों, फलों, जामुनों और बीजों इत्यादि का मौसम के अनुरूप भोजन में उपयोग। यह भी अनुमान लगाया गया कि अल्पविधि के लिए एशूलियन समूहों ने अपनी जनसंख्या को छोटे-छोटे आठ या नौ समूहों या आवासीय श्रृंखला को बनाकर घाटी के चारों तरफ़ बसाया था।

स्रोतः पदैय्या इत्यादि, 1999-2000

3.2.3 पुरापाषाण कालीन पाषाण कला और प्रथाएँ

जिसे आज प्रागैतिहासिक कला कहा जाता है, वह या तो पत्थरों या अस्थियों पर उकेरे गए थे। कहीं-कहीं, मिट्टी, कोयला, सीप दंत एवं सींगों का भी प्रयोग मिलता है। इन गतिशील वस्तुओं पर निर्मित कला को ''घरेलू कला'' या ''घूमंतू कला (art mobilier)'' कहा जाता है। गुफाओं और चट्टानी आश्रयों, छतों एवं दीवारों पर निर्मित कला को ''गुफा कला'' या ''आर्ट पेराईटल'' कहा जाता है।

नक्काशी एवं चित्रकारी के अलावा, मिट्टी और अस्थियों के राख के मिश्रण से निर्मित अनेक कला नमूनों के उदाहरण मिलते हैं। ये उत्तरवर्ती उदाहरण प्रागैतिहासिक कलाकारों के विलक्षता को दर्शाते हैं। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि किसी वस्तु को नमूने के रूप में प्रदर्शित करने का कौशल नक्काशी या चित्रकारी की प्रतिभा से कहीं अलग है।

भारतीय पुरापाषाण काल में शुतुरमुर्ग के अंडे के मनके और नक्काशी के टुकड़ों के रूप में वहनीय कला (Portable art) के उदाहरण मिलते हैं। मध्यप्रदेश में खापरखेड़ा (नर्मदा घाटी) और रामनगर (चंबलघाटी), भीमबेटका III A-28; राजस्थान में चन्द्रसाल और कोटा (चंबल घाटी); और महाराष्ट्र में पटनी प्रमुख स्थल हैं। कुछ अंडों की परतों का काल निर्धारण किया गया है। पटनी – 25,000 बी.पी.; चन्द्रसाल (राजस्थान) की दो तिथियाँ निर्धारित की गई – 38,900 और 36500 बी.पी; रामनगर (मध्य प्रदेश) – 31000 वर्ष बी.पी.। पटनी से प्राप्त अवशेष के टुकड़ों पर मानवों द्वारा बहुत पहले लकीरों की आड़ी-तिरछी नक्काशी मिलती है। शुतुरमुर्ग के अंडों के छिलकों से मनके एवं आभूषण तैयार किए गए थे। इनमें से कुछ के भीतर छेद थे जिनमें से माला पिरोई जाती थी। एकतालीस (41) भारतीय स्थलों से प्रातिनूतन युग के संदर्भ में 39,000 से 25,000 बी.पी. तक के इन मनकों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। भीमबेटका और पटनी में उच्च पुरापाषाण काल के शुतुरमुर्ग के अंडों से निर्मित मनके प्राप्त हुए हैं। पटनी के मनकों का व्यास 10 मीमी. एवं भीमबेटका से प्राप्त मनकों के व्यास 5 मीमी. है। उपिंदर सिंह ने भीमबेटका शैल आश्रयों से उच्च पुरापाषाण काल के कब्र के संदर्भ में शुतुरमुर्ग के अंडों के छिलकों से बनी माला के पाए जाने का उल्लेख किया है, जो दफनाए गए आदमी के गले और खोपड़ी से बरामद हुआ है। वह अवश्य ही विभिन्न तरह के मनकों की माला पहनता होगा; अन्य सभी नष्ट हो गए हैं, लेकिन दो शुतुरमुर्ग के अंडों के छिलकों से निर्मित मनकों के अवशेष बच गए।

> पेट्रोग्लिफ्स् : जब चट्टानी सतह से उसके कुछ हिस्सों को नक्काशी, चोट मारकर, हथौड़े से मारकर, उत्कीर्णन या खोदकर हटा दिया जाता है।
>
> स्रोत : उपिंदर सिंह, 2008

भीमबेटका की गुफाओं और शैल आश्रयों से भित्ति कला के महत्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। यहाँ से प्राप्त शिला चित्र, जो चरण-1 के है, उच्च पुरापाषाण काल के हैं। इन चित्रों में हरे और लाल रंग के समानांतर प्रतिनिधित्व करने वाले बड़े जानवरों जैसे गैंडा, जंगली गवल, जंगली भैंस, प्राचीन हाथी और जंगली सूअरों के चित्र मिलते हैं। वहां डंडी नुमा मानव आकृतियों भी हैं।

पुरापाषाण कालीन कला के संदर्भ में, यह सुनिश्चित कर पाना मुश्किल है कि यह एक नियमित प्रक्रिया की हिस्सा थी या एक प्राकृतिक प्रथा। उपिंदर सिंह ने कुछ वस्तुओं का उल्लेख किया है जो अनुष्ठानीय प्रक्रिया का हिस्सा हो सकती है। उत्तर प्रदेश के बेलन घाटी के लोहण्ड नाला में प्राप्त क्षतिग्रस्त उच्च पुरापाषाण काल के नक्काशी किए गए हड्डी की वस्तु जिसे कुछ लोगों द्वारा मातृदेवी की मूर्ती के रूप में तथा कुछ लोगों द्वारा

बर्छी/भाले के रूप में पहचान की गई। कर्नूल की एक गुफा से जानवरों के दाँत पाए गए हैं जिसमें खांचे हैं जो यह संकेत देते हैं कि उसको किसी धागे से जोड़ा गया होगा या आभूषण के रूप में इसका इस्तेमाल हुआ होगा। भीमबेटका से चकमक चक्र और मैहर (प्रयागराज के दक्षिण-पश्चिम) से मुलायम बालू पत्थर के चक्र मिले हैं जो एशूलियन से संबंधित माने जाते हैं जिसकी प्रथानुसार अनुष्ठानिक महत्ता है। भीमबेटका के गुफा III-F 23 से 'ऑडिटोरियम गुफा' के होने के प्रमाण मिले हैं (चित्र 3.1) (उपिंदर सिंह, 2008)।

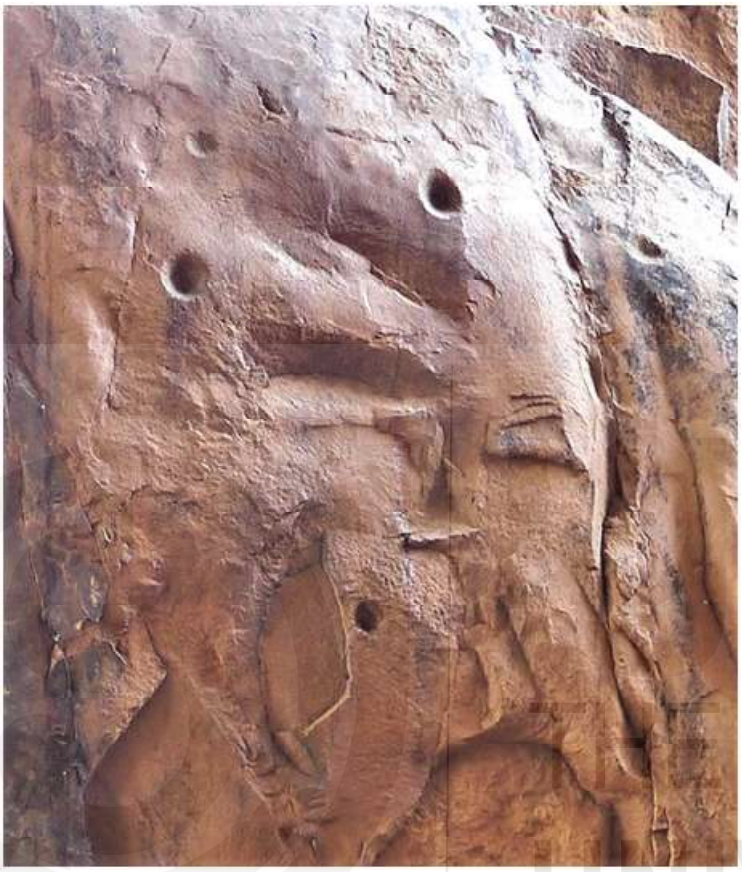

चित्र 3.1: ऑडिटोरियम गुफा, प्यालियाँ नुमा गड्ढे। भीमबेटका। श्रेयः दिनेश वाल्के। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bhimbetka_-_Auditorium_Cave_-_The_cupules_1.jpg).

निम्न और मध्य पुरापाषाण काल की बीच की अवधि से संबंधित 25 मी. लंबी एक सुरंग है जो एक हॉल/सभागार की तरफ़ जाती है जहां पर तीन प्रवेश द्वार हैं। इस गुफा के बीच में एक बहुत बड़ी चट्टान है। इस चट्टान का सपाट एवं लंबवत् सतह जो सुरंग की तरफ़ है, इसमें प्याली जैसी सात गड्ढे हैं जो 16.8 मीमी. से अधिक गहरे हैं। इस चट्टान से कुछ दूरी पर एक दूसरी चट्टान है जहाँ इसके घुमावदार/सर्पाकार रेखाओं जैसी सतह पर एक और प्यालीनुमा बड़ा गड्ढा है। विद्वानों का मत है कि अनेक प्यालीनुमा गड्ढों वाली चट्टान एक घंटे की तरह कार्य करता था जिस पर बार-बार प्रहार से गड्ढे हो गए थे। संभवतः यह पूरी प्रक्रिया किसी परंपरा या अनुष्ठान का हिस्सा रही होगी।

मध्यप्रदेश के बागोर I से उच्च पुरापाषाण काल का 'पवित्र स्थल' मिला है जिसका तिथि निर्धारण 9000-8000 बी.सी.ई. की गयी है। इसमें एक गोल मंच भी मिला है। यह लगभग 85 सेमी. के व्यास वाले बलुआ पत्थर के टुकड़ों से बना है जिसपर एक प्राकृतिक चट्टान का टुकड़ा भी रखा है। इस पर हल्की पीले रंग से लेकर लाल एवं गहरे लाल रंग में गाढ़ा संकेद्रित त्रिकोणीय लेप की परत मिली है। इस मंच के आसपास इसी पत्थर के नौ टुकड़े भी मिलते हैं। जब इन दस पत्थर के टुकड़ों को जोड़ा गया तो 15 सेमी. ऊँचा, 6.5 सेमी.

चौड़ा और 6.5 सेमी. मोटा एक त्रिकोण संरचना का निर्माण होता है। यह त्रिकोणीय पत्थर सीधे मंच के ऊपर रखा गया होगा। कैमूर पहाड़ियों के कोल और बैगा प्रजाति के नृविज्ञान अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे आज भी ऐसे मंच का निर्माण करते हैं और इस त्रिकोणीय पत्थर को मातृशक्ति के प्रतीक के रूप में पूजा करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) पुरापाषाण काल के लोगों के जीवन निर्वाह की मुख्य पद्धति क्या थी?

.....

.....

.....

.....

.....

2) पुरापाषाणकालीन कला पर टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 मध्य पाषाण काल

मध्य पाषाण काल मानव प्रजाति से संबंध रखने वाली एक सांस्कृतिक काल है जो अपने जैविक विशेषताओं में आधुनिक थे तथा होमोसेपियंस् के रूप में जाने जाते थे। इस काल में माइक्रोलिथ की उपकरण प्रौद्योगिकी का विकास हुआ जिसे बड़े पैमाने पर बनाया और इस्तेमाल किया गया। वे संयुक्त उपकरण थे जिन्हें दाँतेदार किनारा बनाने के लिए मूठ या सरे से जोड़ा गया था। भारतीय मध्य पाषाण अपनी पाषाण कला के लिए विश्व में जाना जाता है। मध्य पाषाणिक अर्थव्यवस्था, पुरापाषाण काल जैसी ही थी जो शिकारी तथा खानाबदोश जीवन यापन पर आधारित थी। लेकिन कुछ स्थलों से पशुपालन के भी साक्ष्य मिले हैं। मध्य पाषाण काल के दौरान, जनसंख्या बढ़ी, लोग नये परिस्थितिकीय क्षेत्रों में बस रहे थे। घरेलू फर्शों, मानव कब्र, रिंग स्टोन, और मिट्टी के बर्तनों के साक्ष्य मिलते हैं। संवाद और गतिशीलता भी उन समुदायों में होने की बात कही गई है।

पाषाण कला : जिन गुफाओं में, खुली चट्टानों पर जहां हमारे पूर्वजों ने आश्रय बनाया, कला के हस्ताक्षर मिले हैं, इसे पाषाण कला व पुरातन कला कहा जाता है। इसे शिलाचित्र (पेट्रोग्राफ) और नक्काशी, प्याली (पेट्रोग्लिफ) के रूप में देखा जा सकता है। इन शिलालेखों या चित्रों से मानव मस्तिष्क के उद्‌भव को समझने का एक अनोखा अवसर प्राप्त होता है एवं परिस्थितिकीय संरचना में समाज के भौतिक संस्कृति के अध्ययन के स्रोत भी मिलते हैं।

यह अभी तक स्पष्ट नहीं है कि 'होमो इरेक्टस', हमारा पूर्ववर्ती मानव प्रजाति, निम्न पुरापाषाण काल के दौरान कला को विकसित कर पाए थे या नहीं, हालांकि उन्होंने परिष्कृत एवं सुंदर पत्थर के औजार बनाए थे जो नर्मदा घाटी के जमाव में देखे गए हैं, जो स्वभाव से उपयोगितावाद से कही अधिक थे और निश्चय ही सौंदर्य के मानक थे। व्यापक पैमाने

पर देखा गया कि आधुनिक मानव प्रजाति, होमोसेपियंस, के उद्‌भव के साथ ही लगभग 1,50,000 वर्ष पहले उच्च पुरापाषाण काल के दौरान मानव के मस्तिष्क का तेजी से मनोजैविक विकास हुआ और हमारी प्रजाति ने बहुत जल्दी विचारों एव अभिव्यक्ति के श्रेष्ठ अमूर्त रूप को ग्रहण कर लिया। इस क्षमता का विकास अगले पाषाण युग, जिसे मध्य पाषाण काल कहा जाता है, में तेजी से हुआ जिसमें व्यावहारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आधुनिकता की अभिव्यक्ति दृश्य प्रस्तुति, विभिन्न प्रकार की कला एवं कलात्मक कौशल, व मध्य पाषाणकालीन कला के रूप में हुई।

3.3.1 पाषाण कला के स्थल

पाषाण कला वृहत् रूप में उत्तर, पश्चिम, पूर्व और भारत के दक्षिण भागों तक सीधे लद्धाख से लेकर, जम्मू कश्मीर, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश से तमिलनाडु और केरल तक विस्तृत है। लेकिन, अधिकतर पाषाण कला के स्थल मध्य भारत में है, मुख्यतः छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्यप्रदेश और उडिशा। ऐसा इस क्षेत्र के अनूठे भौगोलिक पर्यावरण के कारण है जिससे मध्य भारत के पठारी क्षेत्रों में प्राचीन मानव संस्कृति के विकास को मदद मिली। विंध्य और सतपुड़ा पहाड़ी क्षेत्रों में, जो मध्य नर्मदा घाटी को सीमित करती है जहाँ पाषाणकालीन मानव का विकास हुआ, सबसे अधिक संख्या में पाषाण कला स्थल हैं। विंध्य और सतपुड़ा पहाड़िया इस तरीके से खंडित और बिखरे हैं जिससे प्राकृतिक रूप से बड़े-बड़े पहाड़ों में शैल आश्रय और गुफा मिलते हैं (चित्र 3.2)।

चित्र 3.2 : प्रागैतिहासिक शैल आश्रय। एएसआई स्मारक न. N-MP-225। श्रेयः नुपुर। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/Category:Rock_shelters_of_Bhimbetka#/media/File:Bhimbetka_caves.jpg).

इन आश्रयों पर प्राचीन शिकारियों, खानाबदोशों एवं पशुपालकों द्वारा आसानी से कब्जा किया गया जिनके वंशज जैसे कि गोड, मुरिया, कोरकु, भिलाला इत्यादि आदिवासी समुदाय आज भी आंशिक खेती कर अपने पारंपरिक शैली में जीते हैं। विंध्य में भीमबेटका शैल आश्रय एवं सतपुड़ा में आदमगढ़ एवं पंचमढ़ी सबसे महत्वपूर्ण पाषाण कला स्थल माने जाते हैं। इसके अलावा छत्तीसगढ़ में दरकी चट्टान ओर झारखंड के हजारीबाग, गिरीडीह और कोडरमडा, चतरा क्षेत्र में और अनेक ऐसे स्थल हैं जो हाल के दिनों में डा. (कर्नल) ए. के. प्रसाद के प्रयासों के माध्यम से थोड़े मशहूर हुए हैं। भीमबेटका, पंचमढ़ी और आदमगढ़ उच्च

पुरापाषाण काल से होते हुए मध्यपाषाण काल, नवपाषाण, ताम्रयुग और प्राचीन ऐतिहासिक काल तक पुराने हैं।

3.3.2 स्थल-विशेष अध्ययन – भीमबेटका

भीमबेटका पाषाण कला स्थल मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में, 22°56′ उत्तर, 77°36′ पूर्व, भोपाल के 45 किमी. दक्षिण और होशंगाबाद के 30 किमी. उत्तर-पश्चिम में है। भीमबेटका, भियनपुर के आदिवासी गाँव के नजदीक स्थित, एक बड़े चट्टानी पर्वत का नाम है। यह पहाड़ी मध्य भारत की पर्णपाती झाड़ियों से ढँकी हुई विंध्य पहाड़ियों का हिस्सा है। यह पहाड़ी एक वर्ग किमी. क्षेत्र के साथ, विघटित अखंड चट्टानों के ऊपर है, जिस पर लगभग 800 प्रागैतिहासिक शैलकृत आश्रयों एवं गुफाओं के परिसर हैं। जहाँ एक तरफ़ सभी आश्रयों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल के चित्र हैं, उनमें से कुछ आश्रयों में पत्थरों के औजार, बर्तन, ताँबा और लौह उपकरण, पत्थर के मनके, शैलखटी (steatite), प्रकाचित मिट्टी के बर्तन (Faience) और पकी मिट्टी के वस्तुएं पशु एवं मनुष्य के अस्थियों के अवशेष के रूप में अतीत के मानव गतिविधियों के साक्ष्य भी मिलते हैं।

यह स्थल नजदीक से एक विशाल किला या गढ़नुमा पर्वत खंडों की तरह दिखता है। भीमबेटका के आधे से अधिक चित्रकारी शैलकृत आश्रय पहुँच के भीतर है, लेकिन कुछ तक घने जंगल में जंगली पशुओं के होने के कारण पहुँचना संभव नहीं।

भीमबेटका नाम क्यों?

भीमबेटका के विशाल चट्टान का नामकरण महाभारत के बलशाली पात्र भीम के नाम पर है, अर्थात् भीम के बैठने की जगह (भीमबैक); धारणा के अनुसार पांडव इन गुफाओं में ठहरे थे।

भीमबेटका का प्रथम उल्लेख भारतीय पुरातत्व रिकार्ड (1888) द्वारा एक बौद्ध स्थल के रूप में होता है। हालांकि, इसके शैलचित्रों की खोज 1957-58 में उज्जैन के एक पुरातत्वविद डॉ. विष्णु वकांकर द्वारा की गई है।

भीमबेटका की पहाड़ियाँ अबरक तथा बालूपत्थर की है। भीमबेटका तथा इसके आसपास 1000 मीमी. वार्षिक वर्षा होती है। इसके कारण से पहाड़ियाँ घनी वनस्पति से आच्छादित हैं। यहाँ नजदीकी बारहमासी स्रोतों के अतिरिक्त, अतीत में अन्य जलस्रोतों का भी इस्तेमाल होता था। यह स्थान आज भी वनस्पति की विविधता के लिए जाना जाता है। कम से कम तीस प्रकार के ऐसे पौधे पाए जाते हैं जिनका इस्तेमाल कंदमूल, जड़ों एवं फलों के रूप में होता है।

हिरण, जंगली सूअर, नीलगाय, चीता, भेड़िया, खरगोश और लोमड़ी जैसे जानवर सामान्यतः पाए जाते हैं। नदियों में प्रचुर मात्रा में मछली मिलती हैं। प्रागैतिहासिक काल में, स्थिति थोड़ी अलग अवश्य रही होगी, लेकिन फिर भी उस समय वनस्पति एवं जीवों की प्रचुरता रही होगी। इन पहाड़ियों में औजार निर्माण करने वाले अबरक पत्थर (Quartzite) का विपुल भंडार मिलता है, जिसमें क्वार्टज और सिलिका खनिज के स्रोत मिले हैं, और जिसका उपयोग औजार या उपकरण बनाने में किया जाता था। इसी कारण से अतीत में यह स्थान शिकारियों एवं संग्रहकर्ता समुदायों को आकर्षित करता था। आश्रय, भोजन, पानी और कच्चे सामग्री के लिए संसाधन आसानी से उपलब्ध थे। यहाँ अधिकतर औजार पीले अबरक पत्थर से निर्मित किए जाते थे। हालांकि कुछ औजार काले/सलेटी अबरक पत्थर से निर्मित किए जाते थे, जो संभवतः सुदूर इलाकों से मँगाए जाते थे।

निम्न पुरापाषाण काल से जुड़ा हुआ समतल चट्टानों से निर्मित पाँच फर्शों की पहचान की गई थी (उपिंदर सिंह, 2008, पृ. 71)। अम्लीय मिट्टी की उपस्थिति के कारण, कोई भी अस्थि अवशेष बच नहीं पाए। 1970 ई. में जेरोम जैकब्सन ने 90 एशूलियन स्थलों का पता एक छोटी घाटी में लगाया जो मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में बालूपत्थर की पहाड़ियों से घिरा हुआ था। इससे मुख्यतः जाड़े के मौसम में बसावट का पता चलता है, शिकारी एवं खानाबदोश समूह वर्षा के मौसम में भीमबेटका पहाड़ियों के निकटवर्ती शैल आश्रयों में चले जाते थे।

3.3.3 उत्खनन

बी. एस. वकांकर ने सात तथा वी. एन. मिश्रा ने तीन आश्रयों की खुदाई की। एक आश्रय, IIIF-24 या ऑडोटोरियम गुफा, में वकांकर को प्राचीन एशूलियन संस्कृति और पूर्व-एशूलियन काटने एवं चाकू औजार के साक्ष्य मिले। दूसरे आश्रय, IIIF-28, में उन्हें एशूलियन आवासीय क्षेत्र को बड़े-बड़े पत्थरों से निर्मित घेरती हुई दीवार मिली। अन्य कई आश्रयों में, उन्हें मध्य पुरापाषाण काल, उच्च पुरापाषाण काल, मध्य पाषाण काल, आरंभिक ऐतिहासिक और मध्यकालीन अवधि के औजार मिले। कुछ आश्रयों में, उन्हें मानव अस्थियाँ मिली जो जीवाष्म बन चुके थे।

वी. एन. मिश्रा ने तीन आश्रयों की खुदाई की : IIIF-15, IIIF-23 और IIB-33। इनमें IIIF-23 मुख्यतः मध्य पाषाण कालीन है। मध्य पाषाण कालीन निवास पत्थरों की दीवारों व चट्टानों से दो भिन्न संरचना में विभाजित है। जहाँ पूर्व-मध्य पाषाण कालीन औजार अबरक पत्थर से निर्मित थे, मध्य पाषाण कालीन औजार पूर्णतः क्रिप्टो-क्रिस्टलाईन सिलिका पदार्थ से निर्मित थे। दूसरे दर्जे की कब्र से प्राप्त अस्थियों को आश्रय के फर्श पर रखा गया है। IIIF-13 आश्रय से चूल्हे की राख, चाक निर्मित मृद्भांड के टुकड़े, सूक्ष्म औजार एवं पत्थर के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

आश्रय IIIF-33 में 1.5 मी. का बसावट का निक्षेप मिला है और इसका विशेष संबंध मध्य पाषाण काल से है। इस निक्षेप से बहुत विकसित ज्यामीतीय माइक्रोलिथ (अति सूक्ष्म उपकरण) के साक्ष्य मिले हैं, जैसे अनेक पीसने के पत्थर, कुछ घिसे हुए बारह सिंगों व हड्डियों के टुकड़े, और कुछ गेरूआ रंग के टुकड़े। इन सभी का संबंध प्राथमिक स्तर की कब्रों से था जो एक दूसरे के ऊपर थे। इस निक्षेप से बहुत कोयला भी मिला जिसका प्रयोग, PRL और BSIP प्रयोगशालाओं में तिथि-निर्धारण के लिए किया गया है। 2000 से 8000 बी.पी. की अनेक तिथियाँ इस कोयले से प्राप्त हुई हैं।

इन सभी आश्रयों से मध्य पाषाणकाल के शिकारी संग्रहण और व्यवस्थित किसानों के आपसी संपर्क के प्रमाण मिले। इन प्रमाणों में ताँबे के उपकरण, चित्रित बर्तन, पत्थर, शैलखटी (steatite), प्रकाचित मिट्टी, पकी मिट्टी, अकीक पत्थर और इंद्रगोप के मनके, शंख की चूड़ियाँ, चीनी मिट्टी और शीशा शामिल है।

3.3.4 पाषाण चित्रकला

भीमबेटका के 642 शैल आश्रयों में से 400 में चित्र, नक्काशी, उत्कीर्णन और चित्रकारी मिली है। ये चित्र भारतीय उपमहाद्वीप के मानव जीवन के सबसे प्राचीन निशानों को दर्शाते हैं। भीमबेटका शैल आश्रय में मध्य से लेकर उच्च पुरापाषाण काल के मानव रहते थे, जिसका प्रमाण यहाँ के पत्थरों के औजार से मिलता है। इन क्षेत्रों में पुराने समय से आदिवासी आज भी रहते आ रहे हैं। 2003 ई. में यूनेस्को द्वारा इसे विश्व धरोहर के रूप में महत्वपूर्ण स्थल

घोषित किए गया। सोमनाथ चक्रवर्ती और यशोधरा मथपाल के अनुसार, भीमबेटका में लगभग 6214 अनुमानित शैल कला कृतियाँ हैं। कुछ आश्रय जैसे जू-रॉक, वाईल्ड बोर, और क्रैब IIIF-9 और रंगमहल विशेष रूप से चित्रों में समृद्ध हैं।

ये चित्र चट्टान के दीवारों, खाली जगहों और छतों पर पाए गये हैं। वे लाल, सफेद, पीले, और कहीं-कहीं काले रंगों में निर्मित हैं (चित्र 3.3, 3.4, 3.5, 3.6 और 3.7)। भीमबेटका की चित्रकला में पशुओं का चित्रण (पशुकला) (Zoomorph) के साथ-साथ मानव चित्रों के साथ जानवरों के झुंड की प्रधानता है। ये विभिन्न प्रकार के पशुओं को दर्शाते हैं, जिनमें बैल, गौर, भैंस, नीलगाय, काला हिरण, बारहसिंगा, सांभर, चीतल, हॉग हिरण, बारकिंग हिरण, हाथी, गैंडे, बाघ, चीता, लकड़बग्घा, भेड़िया, सियार, लोमड़ी, साही, बंदर और चूहे शामिल हैं। इनका चित्रण अकेले या समूहों में बैठे, खड़े, चलते और दौड़ते मुद्रा में किया गया है। इन पशुओं के चित्रण में सजीवता है, ये गतिशील एवं जीवंत दिखाई देते हैं।

भीमबेटका में अंर्तसामूहिक संघर्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले चित्रों में तीरंदाजों के शिकार के दृश्य की श्रृंखला उल्लेखनीय है। शिकार के चित्रों में भाला, डंडे, तीर और धनुष, विभिन्न प्रकार के जाल, मछली फँसाने वाले जाल, कंदमूल को खोदते हुए, और मधु निकालने वाले जाल जैसे औजार एवं उपकरण मिलते हैं। छोटे-छोटे जानवर थैले और टोकरी में रखकर और कंधों या पीठ पर टाँगकर शिविरों में लाए जाते थे। जंगली सूअरों जैसे पवित्रिकृत जानवरों का चित्र मिलता है, जो कई आश्रयों में पाया जाता है।

उत्तवर्ती चित्रों में मानव तस्वीर और पारंपरिक या धार्मिक प्रतीकों और शंखों पर अभिलेखों के साथ ज्यामितीय चित्रण भी मिलता है। नृत्य और छतरी नुमा केश सज्जा के साथ घुड़सवारी करते योद्धा, मधु संग्रह, मछली पकड़ने, जंगली सूअरों के शिकार इत्यादि को दर्शाया गया है।

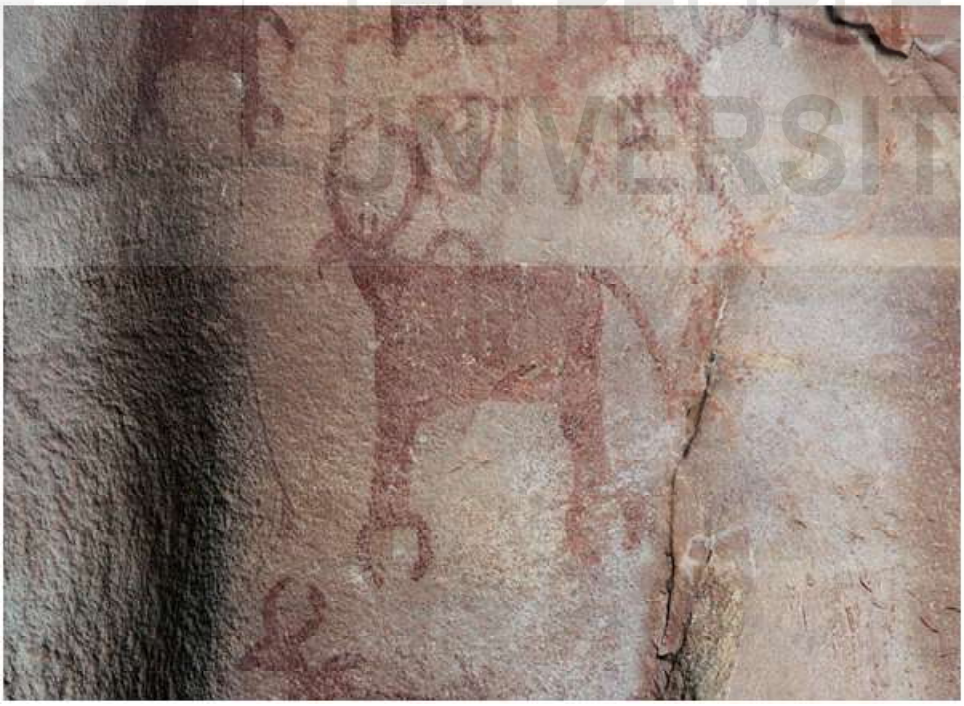

चित्र 3.3 : शैल आश्रय 3 में चित्र, भीमबेटका। श्रेय : विजय तिवारी। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Cave_Paintings_Bhembetika_(23)e.jpg).

चित्र 3.4 : शैल आश्रय 9 में चित्र, भीमबेटका। श्रेय : बर्नार्ड गैग्नॉन। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Rock_Shelter_9,_Bhimbetka_03.jpg).**

चित्र 3.5 : शैल आश्रय 15 में सींग वाले सूअर, भीमबेटका। श्रेय : बर्नार्ड गैग्नॉन। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। **(https://en.wikipedia.org/wiki/Bhimbetka_rock_shelters#/media/File:Rock_Shelter_15,_Bhimbetka_02.jpg).**

चित्र 3.6 : भीमबेटका के मध्य पाषाण कालीन पाषाण चित्रकला। श्रेय : यन्न फॉरगेट। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। **(https://mr.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%9A% E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0: Rock_painting,_Bhimbetka,_Raisen_district,_MP.jpg).**

चित्र 3.7 : मध्य पाषाण कालीन पाषाण चित्रकला, भीमबेटका। श्रेय : w:User:LRBurda। स्रोत : विकीमिडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bhimbetka_rock_paintng1.jpg).

इनमें सींग, पाइप, ड्रम और ढिंढोरा पीटने वाला ड्रम के संगीत वाद्ययंत्रों का चित्रण मिलता है। हम हाथ के चिन्हों, अँगूठों के निशान, हाथ और अंगुलियों के निशान को भी देख सकते हैं। कुल मिलाकर, इनकी आज के सिरे पर रहने वाले कृषक वर्ग एवं भोजन संग्राहक के जीवन निर्वाहन व्यवस्था के साथ समानता देखने को मिलती है।

ये चित्र विभिन्न स्तरों में लाल और सफेद रंगों को दर्शाती है। हरे रंग के चित्रों को प्राचीनतम माना जाता है, हालांकि हेमटैट (लाल रंग) का इस्तेमाल सामान्य था। प्राचीनतम सतह अधिकांशतः जंगली पशुओं के चित्रों को दर्शाती है जो या तो लाल या हरा/सफेद रंग में दर्शाये गये हैं। संभवतः, चारकोल या मैंगनीज से काले रंग को बनाया जाता था जो बाद में इस्तेमाल किया गया।

3.3.5 इन चित्रों का निर्माण क्यों किया गया?

यह माना जा सकता है कि इन चित्रों का इस्तेमाल गुफाओं को सजाने और मनोरंजन के लिए हुआ। के. एल. कामत मानते हैं कि उनमें से कई आश्रय सुनियोजित तरीके से नहीं बनाए गए थे। ये चित्रकलाएँ दर्शाती हैं कि पुराने चित्रों को नष्ट करना या मिटाना भी ज़रूरी नहीं समझा गया। इन रेखाचित्रों का निर्माण एक के ऊपर एक, कई स्तरों में होता गया। हम उन्हें उनके रंग और शैली से अलग कर सकते हैं। अधिकतर, इनका प्रयोग मुसीबतों से राहत के लिए तथा अलौकिक शक्तियों के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिए किया गया क्योंकि लाल, हरा और सफेद रंगों का इस्तेमाल मृत व्यक्तियों को सजाने के लिए किया गया था। कुछ चित्रों को बनाने में अँगुलियों, कुछ को पंखों (पक्षियों के), लकड़ी या मोर के पंखों या साही के काँटों का इस्तेमाल शैली या संरचना के अनुसार किया गया। अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता के साथ, प्रागैतिहासिक काल के लोगों ने अपने जीवनकाल को सामान्य रूप से प्रदर्शित किया जिसमें दो या तीन बार में ही हाथ के स्पर्श से और बाद में चिन्हों से पशुओं व पक्षियों को बनाया गया। कुछ चित्र एकदम सीधी रेखा में है, जबकि कुछ को बारीकी से निर्मित किया गया। दिलचस्प बात है कि भीमबेटका में उत्कीर्ण आकृतियां मध्य भारत में पंचमढ़ी और अन्य स्थलों के बनिस्पत लगभग नगण्य हैं।

भीमबेटका का महत्व

भीमबेटका प्रागैतिहासिक तकनीक, आर्थिक, जीवविज्ञान और कला के मामले में अभूतपूर्व महत्व का पुरातात्विक स्थल है। 800 से अधिक शैल आश्रय और गुफाओं के साथ यह विश्व का सबसे बड़ा समूह है। यहाँ से विश्व की सबसे सुंदर और समृद्ध प्रागैतिहासिक कला के उदाहरण मिलते हैं। ऐतिहासिक क्रम के अनुसार, इन चित्रों को दो भागों में बांटा जा सकता है : प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक। प्रागैतिहासिक चित्रों में जंगली जानवरों, शिकार, मछली पकड़ने इत्यादि के दृश्य को दिखाया गया है। रोजमर्रा के जीवन, नृत्य, गाना, वाद्य यंत्र बजाना, जन्मोत्सव एवं दुःख मनाने के चित्र कम हैं। ऐतिहासिक चित्रकला में सजे हुए हाथी व घोड़ों के जुलूस, तलवारों, ढालों, भालों, धनुष और तीर के दृश्य हैं।

3.3.6 भीमबेटका पाषाण कला समूह का वर्गीकरण

चित्रकला में विभिन्न रंगों का इस्तेमाल किया गया है। इन रंगों को प्राकृतिक रूप से पीसकर बनाया जाता था जिसमें पौधों के रसायन के साथ जानवरों के खून को मिलाकर बनाया जाता था। लाल रंग को आयरन ऑक्साइड (गेरू), सफेद चूना पत्थर से तथा हरे रंग को हरे चकमक पत्थर से बनाया जाता था। कुछ चित्र एक ही रंग में हैं (मोनोक्रोम) जबकि अन्य चित्र अनेक रंगों में है (पॉलीक्रोम)। इन चित्रों में बहुत अधिक गतिविधियों को दर्शाया गया है। इन चित्रों में लिंग आधारित श्रम का विभाजन दिखाया गया है। पुरुषों को शिकार करते और महिलाओं को भोजन तैयार एवं संग्रह करते दिखाया गया है। यशोधरा मथपाल और अन्य विद्धानों ने अनुक्रमिक चरणों का वर्णन किया है। ये नौ चरण निम्नांकित हैं :

प्रागैतिहासिक

चरण I : वृहताकार जानवर (भैंस, हाथी, बड़ी बिल्ली व जंगली मवेशी) सीमांकित व आंशिक रूप से ज्यामितीय और भूल भुलैया पैटर्न से भरा; कोई मानव नहीं है।

चरण II : जानवरों तथा मानवों की छोटी आकृतियां, प्रकृति एवं जीवन से भरपूर; अधिकांश समूहों में शिकारी; हिरण प्रधान; S आकृति वाले अनुशगों में लाल, सफेद एवं चमकीला हरा रंग, नृत्य करते मानव।

चरण III : ऊर्ध्वाधर धारियों और मनुष्यों के साथ बड़े आकार के जानवर।

चरण IV : सुनियोजित एवं सरल आकृतियां।

चरण V : सजावटी। ''लंबे सींगों वाले जानवरों'' को मधुकोष, आड़ी तिरछी, गोलाकार चौकोर पैटर्न में शरीर की सजावट के साथ बारीक पतली रेखाओं में खींचा गया है।

संक्रमणकालीन (कृषि जीवन की शुरुआत)

चरण VI : पहले से बिल्कुल भिन्न; पारंपरिक तथा योजनाबद्ध; कठोर पैरों के साथ एक आयत में जानवरों का शरीर; गोजातीय पर कूबड़, कभी-कभार ऊपर सींग की बनावट; बैलगाड़ी एवं रथ के साथ जुते बैल।

ऐतिहासिक

चरण VII : घुड़सवार और हाथी पर सवार; नर्तक समूह; गाढ़ा लाल और सफेद रंग; कलात्मक कौशल का पतन।

चरण VIII : सैनिकों का जुलूस, हाथियों और घोड़ों पर सवार भाला धारी सरदार, तलवार, धनुष और बाणों से सुसज्जित योद्धा; आयताकार ढाल; घुमावदार; सजीले घोड़े; सीमांकित व सफेद रंग से भरे हुए।

चरण IX : ज्यामितीय मानव चित्र; डिज़ाईन; परिचित धार्मिक प्रतीक और अभिलेख।

बोध प्रश्न 2

1) भारत के दो प्रसिद्ध पाषाण कला स्थलों की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भीमबेटका के पाषाण कलाओं पर किन नमूनों का प्रभुत्व है? अन्य किस प्रकार के भाव निहित हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 सारांश

मानवशास्त्रीय सिद्धांतों की सहायता से हम प्रागैतिहासिक समाज के शिकारी समूहों का अध्ययन पुरातत्वशास्त्र के आधार पर कर सकते हैं। पुरापाषाण काल और मध्य पाषाण काल सामाजिक विकास के शिकार एवं संग्रह वाले चरण को प्रस्तुत करते हैं। जीवाष्म के अवशेष से पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल के जीवन निर्वहन के तरीकों के बारे में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। पुरापाषाण काल के दौरान, लोग मुख्यतः शिकार एवं संग्रह चरण में ही थे। इस दौरान, लोग हाथी, बैल, नीलगाय, हिरण, जंगली सुअर एवं विभिन्न पक्षियों जैसे विशालकाय एवं मध्यम आकार वाले पशुओं का शिकार करते थे। उन्होंने भोजन के लिए पौधे के रूप में उगने वाले कंदमूल और फलों का भी इस्तेमाल किया। शिकार एवं संग्रह मध्य पाषाण काल के दौरान भी जारी रहा। मध्य पाषाण काल के दौरान, लोग छोटे जानवरों का शिकार एवं मछली पकड़ना शुरू कर चुके थे।

भीमबेटका चित्रकला मध्य पाषाण काल के शैल निर्मित चित्रकला का विशिष्ट उदाहरण पेश करते हैं। हिरण, चीता, तेंदुआ, बाघ, हाथी, गैंडा, बारहसिंगा, चीतल और गिलहरियों जैसे जानवरों के चित्र बनाए गए हैं। विभिन्न प्रकार के पक्षी, मछलियाँ, मेंढक, छिपकलियाँ, केकड़े एवं बिच्छुओं के साथ-साथ कीड़ों का भी चित्र मिलता है। हालांकि किसी भी साँप को नहीं दर्शाया गया। पाषाण कला एक अमूल्य साक्ष्य है जिससे उनके जीवन और

गतिविधियों के बारे में जानकारी मिलती है। मध्य पाषाण काल के लोगों ने पुराने युग के लोगों की तुलना में अधिक विभिन्न पारिस्थितिक स्थानों का इस्तेमाल किया। राजस्थान में बागोर एवं होशंगाबाद के नजदीक आदमगढ़ घाटी के मध्य पाषाण कालीन स्थलों से भेड़/बकरी एवं अन्य पालतू पशुओं के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए हैं। भले ही इन साक्ष्यों के ऊपर सवाल खड़े किए गए हैं, हम यह मान सकते हैं कि इस काल से पशुपालन की शुरुआत हो गयी होगी।

3.5 शब्दावली

क्यूपूल (प्याली नुमा गड्ढा) : गोलार्ध, प्याले के आकार का, गैर-उपयोगितावादी, सांस्कृतिक निशान, जो मनुष्यों ने अपने हाथ से बनाया था।

नृवंशविज्ञान : पुरातत्वशास्त्र की एक शाखा जो समुदायों के रहन-सहन तथा उनके बर्तावों का अध्ययन करती है ताकि प्राचीन समुदायों से संबंधित पुरातात्विक साक्ष्यों की व्याख्या कर उनके अतीत के जीवन का पता लगाया जा सके।

जीव-जंतु : काल एवं क्षेत्र विशेष के संपूर्ण पशु वर्ग।

निर्माण प्रक्रिया : यह सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक दोनों प्रकार की घटनाओं से संबंधित है, जिस पर बसने के फलस्वरूप एक पुरातात्त्विक स्थल का निर्माण प्रभावित होता है।

शिकार : जंगली पशु, मछली एवं पक्षियों इत्यादि का भोजन के लिए किया गया शिकार।

मानव (होमिनिम) : सभी आधुनिक एवं विलुप्त मानवों एवं उनके पूर्ववर्ती वंशजों का समूह, विशेषकर चिम्पैंजी से अधिक मानवों से जुड़ी प्रजाति।

स्वस्थानी (*in situ*) : अपने वास्तविक जगह पर।

माइक्रोवियर अध्ययन : औजार या उपकरणों के इस्तेमाल को समझने वाले निशान का अध्ययन।

बारहमासी : जल धारा या स्रोत के रूप में सालों भर बहने वाला।

आयत : सभी चतुर्भुजों के बीच समकोण वाला चतुर्भुज।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) शिकार तथा भोजन की तलाश। उपभाग 3.2.1 देखें।

2) विस्तार के लिए देखें उपभाग 3.2.3।

बोध प्रश्न 2

1) मध्यप्रदेश में भीमबेटका और सतपुड़ा में पंचमढ़ी। देखें उपभाग 3.3.1।

2) पशु कला। देखें उप भाग 3.3.4।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

ऑलचिन ब्रिजैट एंड ऑलचिन, रेएमंड (1982). *द राईज़ ऑफ सिविलाईज़ेशन इन इंडिया एंड पाकिस्तान.* केम्ब्रिजः केम्ब्रिज युनीवर्सीटी प्रैस।

मथपाल, वाई. (1995). *रॉक आर्ट पेन्टिग्सं ऑफ भीमबेटका, सैन्ट्रल इंडिया.* नई दिल्लीः अभिनव पब्लिकेशनस।

मिश्रा, वी. एन. (1989). स्टोन ऐज इंडियाः ऐन इकोलोज़िकल पक्सपैक्टिव. *मैन एंड ऐन्वाइरमैंट,* 14: 17-64।

पदैय्या, के. अन्य (1999-2000). द सिग्नीफीकेंस ऑफ द एशूलियन साईट ऑफ इसमपुर, कर्नाटक. इन लोअर पैल्योलिथिक ऑफ इंडिया. *पुरातत्व,* 30, 1-24।

संकालिया, एच. डी. (1974). *प्रीहिस्ट्री एंड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान.* पूनाः डेक्कन कॉलेज पोस्ट ग्रेजुएट एंड रिसर्च इन्सटीटयूट।

वाकंकर, वी. एस एंड ब्रुक्स, आर. आर. आर. (1976). *स्टोन ऐज पेन्टिगंस इन इंडिया.* बॉम्बेः तारापोरवाला एंड संस।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY